वीर संवत् २५०१ वर्ष : ३० अंक : ३५६

एकत्व

एकत्व ही सुंदर है... एकत्व ही मोक्षमार्ग है

रे आत्मशोधक!

तुम स्वद्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप एक सत् हो। तुम्हारे द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रदेशभेद की कल्पना नहीं करना। तुम्हारे द्रव्य-गुण-पर्याय को सर्वथा भिन्न मानकर आत्मा की एकता को खंडित मत करना। तुम अपने को द्रव्य-गुण-पर्याय से अखंडित एक सत्‌रूप अनुभव करना।—ऐसे सत् के एकत्व में न रहेगी कोई अशुद्धता, न रहेगा परभाव और न रहेगी अपूर्णता; एकत्व की पूर्णता से-शुद्धता से तुम स्वयं सुशोभित-आनंदित हो जाओगे।

जैन संतों ने अपने एकत्व के अनुभव का यह गंभीर रहस्य मुमुक्षुओं के लिये बतलाया है। इस रहस्य को समझनेवाले मुमुक्षुजीव ऐसा अनुभव करते हैं कि 'मैं मेरे आत्मा को द्रव्य से-क्षेत्र से-काल से या भाव से खंडित नहीं करता; सुविशुद्ध एक ज्ञानभाव ही हूँ।' ऐसे एकत्व का अनुभव ही मोक्षमार्ग है, और वही सुंदर है।

'एकत्व-निश्चयगत समय सर्वत्र सुदंर लोक में'
'दर्शाऊँ एक-विभक्त को मुज आत्म के निजविभव से।'

तंत्री-**पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार** * संपादक : **ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**
वीर सं० 2501 मार्गशीर्ष (चन्दा : चार रुपये) वर्ष 30 : अंक 8

वीर सं. 2501
मार्गशीर्ष
फरवरी 1974

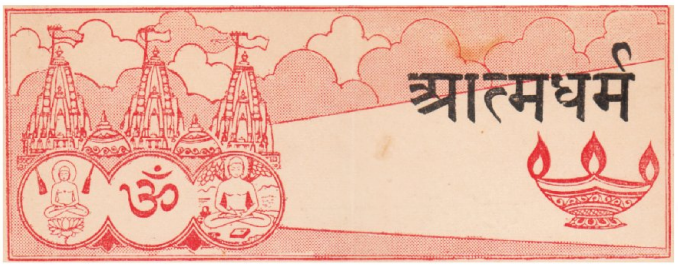

वर्ष 30 वाँ
अंक 8
[356]

साधर्मी बंधुओं, आत्मधर्म का संपादक होते हुए भी मेरा-आपका संपर्क अभी तक बहुत कम रहा है, परंतु अब आत्मधर्म के द्वारा अधिक संपर्क बना रहेगा, क्योंकि हिंदी आवृत्ति को भी सर्वांगसुंदर बनाने के लिये अब संपादन-कार्य में अधिक ध्यान दे रहा हूँ। गुजराती होता हुआ भी मैं हिन्दी का संपादन सम्हाल रहा हूँ—और मुझे विश्वास है कि मेरे साधर्मी हिन्दी-पाठकगण के वात्सल्यपूर्ण सहयोग से मैं इसमें भी इतना ही सफल होऊँगा, जितना गुजराती के संपादन में हुआ हूँ। हाँ, कभी-कभी आपको हिन्दी साहित्य के बीच-बीच में थोड़ा सा गुजराती भाषा का स्वाद भी मिल जायेगा।-तो वह भी आपको मीठा ही लगेगा, और हमारे पूज्यश्री कानजीसवामी की मूल गुजराती भाषा कैसी रसपूर्ण (सरस) है-वह आपको मालूम पड़ेगा। अस्तु।

भगवान महावीर— भव से तिरने के लिये स्वाश्रित मोक्षमार्ग दिखानेवाले हमारे तीर्थंकर! यदि हम राग से दूर हटकर, और ज्ञान को ढाई हजार वर्षों तक भूतकाल में लंबा करके देखें तो, हमारे सम्मुख ही एक सर्वज्ञ और पूर्ण आनंदस्वरूप परमात्मा हमें साक्षात् दिखाई देते हैं:—

ये बैठे भगवान! और यह रहा उनका सुंदर मार्ग!—उन्हें हमारा नमस्कार हो।

प्रिय साधर्मी बंधु! कितना महान है हमारा भाग्य कि आज भी ऐसे सर्वज्ञदेव और उनका मार्ग श्री गुरुप्रताप से हमें प्राप्त है, और उनका महान उत्सव हम मना रहे हैं। यह समस्त उत्सव का ध्येय है—'आत्महित'। हमारा आत्महित हो, और आत्महित के मार्ग में हम एक-दूसरे को साथ दें, इसप्रकार से पूरी शक्ति लगाकर हम यह अपूर्व उत्सव सब साथ मिलकर मना रहे हैं।

अब आत्मधर्म में अनेक नये विभाग भी चालू करने का हमारा प्रयत्न है; आप भी आत्मधर्म की अधिक सुंदरता के लिये अपनी-अपनी सूचनायें भेजिये, एवं देव-गुरु-धर्म की प्रभावना में साथ दीजिये। 'जय महावीर' (ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

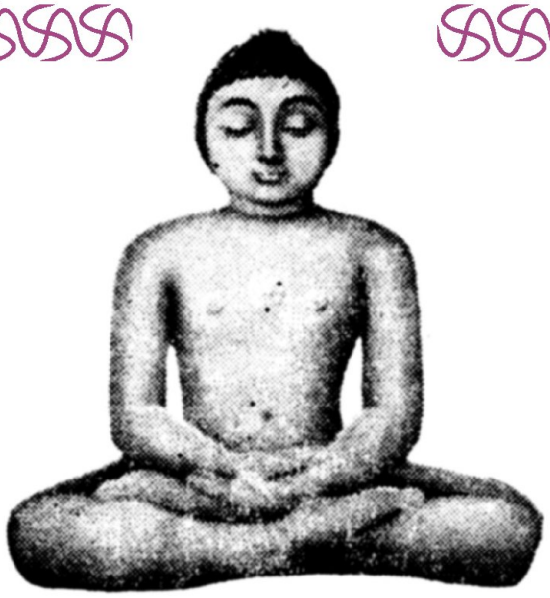

हम सर्वज्ञ को बुलाते हैं.... मोक्षपुरी में जाते हैं

प्रभो, सर्वज्ञ महावीर! ढाई हजार वर्ष पूर्व आपका जो निर्वाण-महोत्सव हुआ था, उसको आज वर्तमानवत् ताजा करके, हमारे छोटे से ज्ञान में भी हम आपको साक्षात्कार करते हैं। हमारा यह छोटा-सा (मति-श्रुत) ज्ञान भी जब आपके साथ संपर्क करता है (-अर्थात् अंतर्मुख होकर सर्वज्ञस्वभाव में तन्मय होता है), उस समय वह स्वयं भी अतीन्द्रिय होकर ऐसा महान बन जाता है कि उसे सर्वज्ञता भी अपने से कहीं दूर नहीं दिखती; वह इंद्रियों से पार होकर अतीन्द्रियसुख के रस में निमग्न हो जाता है।

प्रभो, आपका स्वीकार करनेवाला हमारा यह ज्ञान स्वयमेव आनंद के उत्सवरूप है, हमारे इस ज्ञान में आप सदैव मौजूद ही हो।—ऐसा यह ज्ञान उत्सवपूर्वक निर्वाण की साधना करता हुआ, आनंदमय डग भरता हुआ, निर्वाणमंदिर में आपके समीप पहुँचने को आगे बढ़ रहा है... आपके पास पहुँचने में अब अधिक देर नहीं है। (ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

भगवान महावीर के शासन में अनेकांत के अपूर्व चमकार

[समयसार-स्याद्वाद अधिकार के प्रवचन से]

स्वतत्त्व में द्रव्य-गुण-पर्याय की एकतारूप, तथा स्व-पर के भेदज्ञानरूप, —ऐसा अनेकांत वीतरागी वीरमार्ग में ही है

यह ज्ञायकस्वभावी आत्मा का अस्तित्व अपने द्रव्य-गुण-पर्यायरूप अनेकांतस्वभाव से है; अन्यरूप से इसका अस्तित्व नहीं है; अन्य के अस्तित्व से इसका अस्तित्व भिन्न है।

अहो, अपने ऐसे स्वरूप अस्तित्व का वेदन जिसको हुआ, वह जीव अपने अनंत स्वभावों से अपने को परिपूर्ण जानता है, अतः अपने सन्मुख होकर उसकी ही भावना करता है, वह अपने आप तृप्त हो जाता है।—यह महावीर के अनेकांतमार्ग का चमत्कार है।

अपने शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायरूप आत्मा स्वज्ञेय है। अपने में ही परिपूर्ण ऐसे इस स्वज्ञेय को जानने से आत्मा अपने में ही स्वयं परितृप्त सुखी हो जाता है। स्वज्ञेय को जानने का यह फल है।

'एकत्व-विभक्त' आत्मा कहो या स्वज्ञेय कहो, उसका स्वरूप दिखाकर महावीर-शासन में कुन्दकुन्दस्वामी ने भव्य जीवों के ऊपर महान उपकार किया है; उनके प्रताप से महावीर प्रभु का शासन आज भी विद्यमान है; उसे पाकर स्वज्ञेय को जानकर अपना कल्याण करने का यह अवसर है और इस समय तो महावीर भगवान के निर्वाण का २५०० वर्षीय महोत्सव चल रहा है। भगवान ने निर्वाण का जो मार्ग कहा, उसे समझकर उस मार्ग में चलना, यही उनका सच्चा महोत्सव है। यदि भगवान के मार्ग को न पहिचाना और मात्र बाहरी धामधूम कर ली, तो इससे आत्मा को क्या लाभ हुआ ?

❋ वीर का मार्ग स्वाधीन है; उसमें देव की भी सहाय नहीं ❋

आत्मा के मोक्ष का मार्ग आत्मा स्वयं अकेला ही अपने में से साधता है; उस मार्ग के साधने में स्वर्ग के देव भी सहाय नहीं कर सकते, तब फिर दूसरों का क्या काम है ? धर्मी कहते हैं कि—यदि देव सहाय करने को आवे तो भी मुझे उसका क्या काम है ? मेरा धर्म तो मैं अपने आत्मा की अनुभूति द्वारा साध ही रहा हूँ, तब फिर देव आ करके उसमें क्या करेगा ? मेरे स्वाधी मोक्षमार्ग में मेरे को किसी की सहाय भी नहीं है, तथा मुझे कोई विघ्न भी करनेवाला नहीं है। ऐसी अपनी स्वाधीनता को नहीं जाननेवाला, राग का तथा विषयों का अभिलाषी जीव मोक्ष को नहीं साध सकता। अरे, शूरवीर को सहाय किसकी ? स्वाधीन ऐसा मोक्षमार्ग, उसमें चलनेवाले वीर जीवों को अन्य किसी के आश्रय की बुद्धि नहीं होती। अहो, यह तो आत्मा के एकत्व का सुंदर मार्ग है, स्वाधीनता से सुशोभित वीरों का यह मार्ग है।

स्वज्ञेय को जाननेवाला स्वसमय है।
स्वज्ञेय को जो न जाने, वह ज्ञान सत्य नहीं है।

अंतर्मुख होकर जिस पर्याय ने अपने पूर्ण स्वभाव को स्वज्ञेय बनाकर जान लिया, वह पर्याय उसी स्वभाव में अभेद होकर परिणमी, अतः वह पर्याय आत्मा की ही है अथवा अभेद-विवक्षा से वह आत्मा ही है—ऐसा कहा है; भले ही उस पर्याय में स्व-पर को जानने का सामर्थ्य होने से वह पर को भी जाने। आत्मा में अभेद ऐसी वह पर्याय स्व-पर प्रकाशक स्वभावरूप परिणमन करती है—यह तो उसका स्वभाव ही है। ऐसे ज्ञानमय आत्मा को जो स्वज्ञेय बनावे, वह स्वसमय है।

और, ऐसे ज्ञानस्वभावी स्वज्ञेय को जो पर्याय नहीं जानती, और स्व के अस्तित्व को भूलकर अकेले परज्ञेय को जानना चाहती है, वह पर के साथ एकत्व मानकर अज्ञानरूप परिणमती है, अतः परमार्थ से उसे ज्ञानस्वभाव की पर्याय नहीं कहते; उसने पर के साथ एकत्व माना, इसलिये उसको पर पर्याय (पर समय) ही कहा दिया; और ऐसी पर्याय में जो स्थित है, उस जीव को परसमय में स्थित कहा।

जो ज्ञान मोक्ष का साधक है, उसका लक्ष्य आत्मा है

अरे, स्वतत्त्व के अस्तित्व को जो न जाने-वह ज्ञान कैसा ? ज्ञान का लक्ष्य तो अपना

आत्मा होना चाहिये। स्वलक्ष्य को भूलकर जो अकेले पर को लक्ष्य बनाता है, वह सत्यज्ञान नहीं है; सत्यज्ञान स्व को जानकर उसी में तन्मय होकर अनंत गुण के स्वाद को एक साथ अनुभव में लेता है, और वही ज्ञान मोक्ष का साधक है।

अहो वीतरागी जिनमार्ग! तेरी अद्भुतता न्यारी है;
तू अनंत सुखमय जीवन का देनेवाला है।

अहो, ऐसा स्पष्ट स्व-पर का भेदज्ञान वीतरागी वीरमार्ग में ही है। ज्ञान के स्वभाव में राग के कोई अंश का मिलान नहीं हो सकता; जो राग का परिणमन है, वह ज्ञान का परिणमन नहीं है;—ज्ञान तथा राग की ऐसी भिन्नता को नहीं जाननेवाला जीव, राग को जानते समय उसमें ही एकत्वबुद्धि करके ज्ञान को भी रागरूप ही समझकर अपने को रागी ही अनुभवता है। तब ज्ञानी तो ज्ञानवस्तुरूप से ही अपना अस्तित्व जानता हुआ, राग को जानते समय भी अपने को तो ज्ञानभावरूप ही अनुभवता है।—ऐसे अनुभव का नाम अनेकांत है, और वह अनेकांत आत्मा को जीवित रखता है, अर्थात् ऐसे अनेकांत के द्वारा धर्मी जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित होता हुआ मोक्ष को साधकर सदा काल अनंत सुखमय जीवन जीते हैं,—यही आत्मा का सत्य जीवन है। 'अनंतसुखमय ऐसा जीवन वीतरागी जिनमार्ग के सेवन से प्राप्त हुआ है। वाह! बलिहारी है वीतरागी जिनमार्ग की! जयवंत वर्तो जिनमार्ग!'

❋ चेतनभावरूप आत्मा में द्रव्य-पर्याय दोनों एक साथ हैं ❋

[उनमें से किसी एक का भी निषेध करनेवाला एकांतवादी
जीव आत्मा को नहीं साध सकता]

❋ चैतन्यस्वरूप आत्मवस्तु—जिसके चैतन्यभाव के साथ में अनंत धर्म भी वर्त रहे हैं—उस वस्तु का अनुभव नहीं करनेवाला कोई उसे मात्र अनित्यपर्यायरूप क्षणिक जानता है, नित्य रहनेवाले द्रव्यस्वभाव को नहीं जानता; ऐसा एकांतवादी जीव आत्मा को नहीं साध सकता।

❋ उसी प्रकार चैतन्यभाव को जो सर्वथा नित्य जानता है, और उसमें पर्याय के परिणमनरूप जो अनित्यता है, उसे नहीं मानता, वह भी एकांतवादी होने से आत्मा को नहीं साध सकता।

❋ चैतन्यभावरूप एक ही वस्तु स्वयं नित्यता-अनित्यता इत्यादि अनंत स्वभावोंरूप एक साथ परिणमन करती है, उसे जाननेवाला धर्मी जीव पर से भिन्न ऐसे अपने एकत्व को साधता है।

अनेकांत के बिना इष्ट की सिद्धि नहीं हो सकती।

❋ जिनदेव के अनेकांतरूप धर्मचक्र का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता ❋

❋ सर्वज्ञदेव से प्रतिपादित अनेकांतमय वस्तुस्वरूप है, वह जिनदेव का अलंघ्य शासन है। ऐसी अनेकांतमय जिननीति को जाननेवाला धर्मात्मा अपने को शुद्ध चैतन्यरूप ही अनुभव में लेता हुआ, केवलज्ञान प्रगट करके, अनंत चतुष्टमय सुप्रभात से चकचकायमान होता है।

❋ द्रव्य-पर्याय, यह तो वस्तु का स्वरूप ही है; वस्तु के ऐसे स्वरूप को खंडित नहीं किया जा सकता; जो खंडित करना चाहेगा, उसका ज्ञान ही खंडित (मिथ्या) हो जायेगा, किंतु वस्तु का अनेकांतस्वरूप खंडित नहीं होगा।

❋ पर्याय से रहित आत्मा नहीं होता ❋

ज्ञानपर्याय, जो शुद्ध है और राग-द्वेष रहित पदार्थों को जानने का जिसका स्वभाव है—उस पर्याय से रहित एकांत-ध्रुव कूटस्थ आत्मा को जो अनुभव में लेना चाहता है, वह एकांतवादी-मिथ्यादृष्टि है। हमें आत्मा में अनित्यता नहीं चाहिए, अकेला ध्रुव ही चाहिए-ऐसा मानकर जो पर्याय का निषेध करता है, उसे ज्ञानवस्तु का ही निषेध हो जाता है, अर्थात् ज्ञानस्वरूप आत्मा उसके अनुभव में नहीं आता।

आचार्यदेव अनेकांत के द्वारा उसे सत्यस्वरूप समझाते हैं कि भाई! पर्याय भी तेरा स्वभाव ही है, वह कहीं बाहर की उपाधि नहीं है। जिसप्रकार नित्यता वस्तु का स्वभाव है, उसीप्रकार अनित्यता भी वस्तु का स्वभाव है। ऐसे दोनों स्वभाववाली वस्तु को जानो, तभी सच्चा अनुभव होगा।

❋ वीरमार्ग में अनेकांत का सिंहनाद ❋

अनेकांत यह तो वीरमार्ग का सिंहनाद है। भगवान महावीर का लांछन सिंह है; सिंह यह शूरवीरता का सूचक है। तो महावीरमार्ग में जिनवचनरूप सिंहनाद सुनकर मुमुक्षु जीव वीतरागी वीरता के द्वारा मोक्षमार्ग को साधता है। जहाँ सिंहगर्जना होती हो, वहाँ हिरन खड़े नहीं रह सकते, वैसे जहाँ वीर के अनेकांत का सिंहनाद हो, वहाँ एकांत-द्रव्य या एकांत-पर्याय इत्यादि मिथ्यावादरूपी हिरनें खड़े नहीं रह सकते। अनेकांतसूर्य का प्रकाश द्रव्य-पर्यायरूप वस्तु को एकसाथ प्रकाशित करता है।

❋ मोक्ष का सत्य महोत्सव... अर्थात्... मोक्षमार्ग की साधना ❋

अनेकांतमय शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव, वही मोक्ष का मार्ग है, अन्य कोई मार्ग नहीं है। शुद्ध जीव की अनुभूति में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों गर्भित हैं, उसरूप से परिणमन करनेवाला जीव सिद्धपद को पाता है। भगवान महावीर ने मोक्ष का ऐसा मार्ग हमें दिखाया और वे स्वयं भी इसी मार्ग से मोक्षपुरी में पधारे। उसे इस वर्ष में ढाई हजार वर्ष पूरे हुए, अतः इसका महान उत्सव सारे भारतवर्ष में अभी चल रहा है। वास्तव में तो, भगवान ने जो मोक्षमार्ग हमें दिखलाया, उसे समझ करके अपने में ऐसा मार्ग प्रगट करना, यही सत्य महोत्सव है—जिसका फल मोक्ष है।

❋ परमगंभीर चैतन्यतत्त्व को देखनेवाला अनेकांतचक्षु जैनशासन में ही है ❋

आत्मा अनेक धर्मस्वरूप होने से वह अनेकांतरूपी चक्षु से दिखने में आता है; राग से या इंद्रियों से आत्मा दिखने में नहीं आता; एकपक्षी ज्ञान के द्वारा भी वह नहीं दिखता; अनंत स्वभावधर्मों में से परम गंभीर ऐसा चैतन्यतत्त्व, उसे जाननेवाला ज्ञान भी अनेकांत से परम गंभीर है। जैनशासन में ही उसकी सच्ची पहचान हो सकती है। चैतन्य के अनुभवरस में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-सुख सब समाये हुए हैं।

❋ जैसे दो द्रव्य का अस्तित्व भिन्न है, वैसी भिन्नता द्रव्य-पर्याय के बीच में नहीं है ❋

जिसप्रकार दो द्रव्यों का भिन्न-भिन्न अस्तित्व है। इसप्रकार एक ही द्रव्य के अंदर द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का अस्तित्व भिन्न-भिन्न नहीं है, परंतु एक ही अस्तित्व तीनों स्वरूप

है। दो द्रव्यों के बीच में तो प्रदेशभेद है; द्रव्य-गुण-पर्याय के प्रदेशभेद नहीं है, अभिन्न प्रदेशत्व है।

❋ अकेले ध्रुव को अलग खोजनेवाले का अनुभव खो जाता है। ❋

❋ धर्मात्मा सर्व गुणों से अभेद आत्मवस्तु को अनुभव में लेते हैं। ❋

(धर्मात्मा की अनुभूति में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव का भेद नहीं रहता, एक सत्ता रहती है।)

एक ही आत्मवस्तु में ध्रुवत्व, अध्रुवत्व, ज्ञानत्व, एकत्व, सत्त्व इत्यादि अनंत गुण-स्वभाव हैं, उनका द्रव्य से अभिन्नपना है; उनमें से प्रत्येक शक्ति का खंड-भेद करके 'आत्मा ध्रुव ही है; आत्मा ज्ञान ही है, आत्मा अध्रुव ही है।' ऐसा देखने से अनंत भेद होकर विकल्पों का ही उत्थान होता है, और अभेदरूप सत्य जीव का अनुभव खो जाता है। देखो, 'मैं ध्रुव हूँ' यह भी एक नय का विकल्प है, उसमें आत्मा का अनुभव नहीं है। आत्मा के अनुभव में तो सर्वगुणों से अभेदरूप वस्तु है। अनंत धर्म आत्मा में है अवश्य, परंतु आत्म-अनुभूति में उनका भेद नहीं है। यदि कोई एक धर्म को जुदा करने जाये तो उसे जीव का अनुभव खो जाता है और विकल्प का क्लेश उत्पन्न होता है। धर्मी तो अनंत धर्मरूप वस्तु में भेद किये बिना निर्विकल्प ज्ञानमात्र आत्मवस्तु को अनुभव में लेते हैं।

❋ अनुभव करनेवाले धर्मी जीव अनुभूति में क्या करते हैं ? ❋

न द्रव्येण खंडयामि, न क्षेत्रेण खंडयामि,

न कालेन खंडयामि, न भावेन खंडयामि,

सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रभावो अस्मि।

अनंत धर्मोंरूप अभेद शुद्धचेतनामय ऐसे मेरे आत्मा का अनुभव करनेवाला मैं, मेरे आत्मा को द्रव्य से भेद करके खंडित नहीं करता, क्षेत्र से भेद करके खंडित नहीं करता, काल से भेद करके खंडित नहीं करता, और भाव से भेद करके खंडित नहीं करता; अखंडितरूप वस्तु को रखता हुआ सुविशुद्ध एक ज्ञानमात्र भावरूप ही मैं हूँ। देखो, 'मैं मेरे को अभेद अनुभव करता हूँ' इतना भी भेद न रखा, किंतु 'मैं सुविशुद्ध एक ज्ञानमात्र भाव ही हूँ।'—इसमें

स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल और स्वभाव समा जाता है। स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल तथा स्वभाव ऐसी भिन्न-भिन्न चार सत्ताएँ नहीं हैं, चारों स्वरूप एक ही सत्ता है।

एक जीववस्तु में स्वद्रव्य का ध्रुव अंश भिन्न, क्षेत्र का अंश भिन्न, स्वपर्यायरूप काल का अंश भिन्न, और स्वभाव का अंश भिन्न—इसप्रकार भिन्न-भिन्न चार अंश नहीं हैं; एक वस्तु में चारों ही एक साथ हैं; भिन्न-भिन्न एक-एक का ग्रहण आत्मवस्तु की अनुभूति में नहीं होता, अनुभूति में ये सब एक साथ हैं। उसमें भेद करने से विकल्प का उत्थान होता है तथा अनुभूति अस्त हो जाती है; और अनुभूति का उदय होने पर भेद का अस्त हो जाता है।

❋ ऊंडी-गंभीर-महान अनुभूति के आनंद की महिमा ❋

जैसे एक मीठा-बड़ा-हरा आम्र का ग्रहण करने से उसके स्पर्श-रस-गंध-वर्ण जुदे नहीं रहते, आम्र के ग्रहण में उन सभी का ग्रहण हो जाता है; उसीप्रकार अनुभूति में एक चैतन्यवस्तु का ग्रहण करने से उसके स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, उत्पाद-व्यय-ध्रुव, द्रव्य-गुण-पर्याय—इन समस्त स्वभावों का एकसाथ ग्रहण हो जाता है, उसमें खंड-खंडरूप भेद नहीं रहते।—अहो, ऐसी अनुभूति के महान अतीन्द्रिय आनंद को धर्मी ही जानते हैं।

अरे जीव! तू देख तो सही, कि अनुभूति के लिये आत्मा के अंदर कितनी गहराई में जाने का है! ऐसी अद्भुत-गंभीर तेरी आत्मवस्तु, उसमें जाने के लिये (अर्थात् उसका अनुभव करने के लिये) बाहर के रागादि भाव तेरे को कोई काम में आनेवाला नहीं। जब अंतर के एक-एक गुण के भेद का विचार भी आत्म अनुभूति को रोक देता है, तब फिर दूसरे बाह्यभावों का तो क्या कहना? अतः उन सबकी अपेक्षा छोड़कर तू सीधा अंतर की वस्तु में घुस जा, आत्मा में उपयोग लगा दे, तभी तेरे को स्वतत्त्व का साक्षात्कार होगा; और उसका साक्षात्कार होते ही तुझे तेरा अपूर्व आनंद स्वाद में आयेगा, तेरा भवभ्रमण मिट जायेगा। अहा, ऐसे अनुभव की क्या बात! वह तो स्वसंवेदनगम्य है।

—ऐसा अनुभव करना, यही भगवान महावीर का मार्ग है।

❋ साधकदशा की अद्भुतता!—जिसमें मुक्ति भी स्पर्शती है ❋

अपने स्वरूप का अनुभव करनेवाला साधक धर्मात्मा आत्मा के परम अद्भुत महिमा

का साक्षात्कार करता है, अहो, चैतन्यस्वभाव की गंभीरता की कोई परम अपार महिमा है। पर्याय में एक ओर वीतरागी शांति का वेदन है, और दूसरी ओर कषाय का कोलाहल भी दिखता है।—देखो, यह साधकभाव! जिसमें अकेला कषाय ही नहीं है, एवं कषाय का सर्वथा अभाव भी नहीं हुआ है; कुछ शांति है, कुछ दु:ख भी है; दोनों भाव अपनी एक पर्याय में एकसाथ वर्तते हैं, तो भी भेदज्ञान उन दोनों भावों का पृथक्करण करके उनको एक-दूसरे से भिन्न जानता है।—ऐसी साधकदशा आश्चर्यकारी है; उसमें चैतन्य की महिमा अद्भुत है—वह साधक के ज्ञान में निरंतर रहा करती है। वे राग के समय भी चैतन्य की अद्भुतता की महिमा भूलते नहीं।

'अरे, ज्ञानी के भी कहीं कषाय होता है?'—ज्ञानचेतना के साथ साधक को अपनी भूमिका के योग्य कषाय (दसवें गुणस्थान तक) विद्यमान रहता है, किंतु ज्ञानी की विशेषता यह है कि उसकी ज्ञानचेतना जो प्रकट है, वह तो कषाय से रहित शांतरस में ही लीन है; उसको चेतना का कार्य तथा कषाय का कार्य,—ये दोनों सर्वथा भिन्न ही दिखते हैं; चेतना को और कषाय को—एक-दूसरे से कुछ रिश्ता-नाता नहीं है। देखोजी, यह धर्मात्मा की अद्भुतता! एक ही पर्याय में दो भावों का रहना, फिर भी दोनों भावों का एक-दूसरे से किंचित् भी कर्ता-कर्म संबंध नहीं, ज्ञानचेतना कषाय को न करती है, न भोगती है; अत: ज्ञानी की ज्ञानचेतना में तो शांति तथा मुक्ति ही स्पर्शती है।

—ऐसी ज्ञानचेतना महावीर के शासन में मिलती है।

भगवान महावीर का सच्चा निर्वाणोत्सव ऐसी ज्ञानचेतना से ही होता है।

❋ जय महावीर ❋

एक था हाथी

बंधुओं, बहुत समय से अभिलाषा थी कि अपने जैन पुराणों में से धर्मात्माओं की अच्छी-अच्छी कहानी लिखकर आपको दूँ; आप सबकी भी बहुत मांग थी कि हमें कहानी कहो! तद्नुसार आत्मधर्म में कभी कभी धर्मात्मा की कहानी हम प्रस्तुत करते हैं। उसे आनंद से पढ़ना और उसमें से उत्तम बोध लेना। जय महावीर,

—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन

एक था हाथी... बहुत बड़ा हाथी! बहुत सुंदर हाथी!
यह बात भगवान रामचंदजी के समय की है।

महाराजा रावण एक बार लंका की ओर जा रहा था, कि बीच में सम्मेदशिखर-धाम आया। इस महान तीर्थधाम को देखकर रावण बहुत आनंदित हुआ, और उसके समीप अपना मुकाम किया।

अचानक ही वहाँ मेघगर्जना जैसी गर्जना सुनाई देने लगी; लोग भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे; सेना के हाथी-घोड़ा भी भय से चिल्लाने लगे। रावण ने यह कोलाहल सुना, और महल पर चढ़कर देखा कि—एक अति विशालकाय और अत्यंत बलवान मदमस्त हाथी इस तरफ आ रहा है, उसकी यह गर्जना है, और उससे डर कर लोग भाग रहे हैं; हाथी बहुत ही सुंदर था। ऐसा सुंदर और ऊँचा हाथी देखकर रावण प्रसन्न हुआ और इस हाथी पर सवारी करने की उसे अभिलाषा हुई; इसलिये हाथी को पकड़ने के लिये वह नीचे आया और हाथी के सन्मुख जाने लगा। रावण को देखते ही हाथी उसकी ओर दौड़ा। लोग तो आश्चर्य से देखते रह गये कि अब क्या होगा!

परंतु राजा रावण बहुत बहादुर था। 'गजकेली' में अर्थात् हाथी के साथ खेलने की

कला में वह निपुण था। सर्वप्रथम उसने हाथी के सन्मुख एक लकड़ी फेंकी, हाथी उसे सूँघने रुका, उसी समय रावण उछलकर हाथी के सिर पर चढ़ गया, और उसके कुंभस्थल पर मुष्ठियों का प्रहार करने लगा।

यकायक ऐसा होने से हाथी घबड़ाया; उसने सूँड़ ऊँची उठाकर रावण को पकड़ने की बहुत चेष्ठा की, परंतु रावण उसके दो दंतूशल के बीच में से सरककर उतर गया।—इसप्रकार बहुत समय तक हाथी से खेल करके रावण ने उसको परास्त कर दिया; और अंत में वह हाथी की पीठ पर चढ़ गया। हाथी भी मानों राजा रावण को पहिचान गया हो, उसप्रकार शांत होकर विनयवान सेवक की तरह खड़ा रह गया। रावण हाथी पर बैठकर महल की ओर आया। यह देखकर सर्वत्र जय-जयकार होने लगा।

यह हाथी रावण को बहुत ही पसंद आया; वह उस हाथी को लंका अपने साथ ले गया; लंका में उस हाथी की प्राप्ति का उत्सव करके उसका नाम 'त्रिलोमंडन' रखा। रावण के लाखों हाथियों में वह पट्टहाथी था।

❀ ❀ ❀

अब, एक बार रावण सीता का हरण कर ले गया, राम-लक्ष्मण ने युद्ध कर रावण को जीता और सीता को लेकर अयोध्या पधारे; तब लंका से अपने साथ त्रिलोकमंडन हाथी को भी अयोध्या लेते आये। राम-लक्ष्मण के ४२ लाख हाथियों में यह हाथी सबसे बड़ा था, और उसका बहुत सम्मान था।

राम का भाई भरत बहुत वैरागी था, और वह मुनि होना चाहता था; परंतु राम-लक्ष्मण ने आग्रह करके उसको रोक लिया था।

एकबार वह भरत सरोवर के किनारे गया था; उस समय गजशाला में क्या हुआ ?—वह सुनो! मनुष्यों की भारी भीड़ देखकर त्रिलोकमंडन हाथी भयभीत हुआ, और बंधन तोड़कर भयंकर गर्जना करता हुआ भागने लगा। हाथी की गर्जना सुनकर अयोध्या के लोग भयभीत हो गये। हाथी दौड़ता हुआ चला जा रहा है; राम-लक्ष्मण उसे पकड़ने के लिये पीछे दौड़ रहे हैं। हाथी दौड़ता हुआ सरोवर के किनारे भरत के सम्मुख चला। लोग चिंता में

पड़ गये और चिल्लाने लगे कि—हाय! हाय! भरत का क्या होगा! उसकी माता कैकेयी तो हा-हाकार करने लगी।

भरत ने सौम्यदृष्टि से हाथी की ओर देखा, और हाथी ने भी भरत को देखा।-बस, देखते ही अचानक हाथी शांत हो गया; हाथी ने उसे पहिचान लिया कि अरे, यह भरत तो मेरा पूर्वभव का परम मित्र है! हाथी को पूर्वभव का ज्ञान हुआ; पूर्वभव में उसका मित्र था, और वे दोनों छठवें स्वर्ग में साथ में थे। हाथी को वह सब स्मरण हुआ और वह बहुत पश्चात्ताप करने लगा कि अरे रे! पूर्वभव में, मैं भरत के साथ ही था परंतु मैंने भूल की, बहुत मायाचार किया, इस कारण मैं देव में से यह पशु हुआ हूँ। अरे रे, ऐसा पशु का अवतार! उसे धिक्कार है।

इसप्रकार भरत को देखते ही हाथी बिल्कुल शांत होकर खड़ा रहा। जिसप्रकार गुरु के पास शिष्य विनय से खड़ा रहता है, उसीप्रकार भरत के पास हाथी विनय से खड़ा रहा। भरत ने प्रेम से उसके सिर पर हाथ रखकर कहा कि—अरे गजराज! तेरे को यह क्या हुआ? तू शांत हो!! यह उन्माद तेरे को शोभा नहीं देता। अत: तेरे चैतन्य की शांति को तू देख!

भरत के मधुर वचन सुनकर हाथी को बहुत शांति मिली; उसके नेत्रों से अश्रु की धारा बहने लगी! वैराग्य से वह विचार करने लगा कि अरे, अब अफसोस करने से क्या? अब तो मैं ऐसा उपाय करूँगा कि जिससे मेरा आत्मकल्याण हो और मैं इस भवदु:ख से छुटकारा पाऊँ।—इसप्रकार परम वैराग्य का चिंतन करता हुआ वह हाथी बिल्कुल शांत होकर भरत के सन्मुख टकटकी लगाकर देखता रहा—मानों कहता हो कि हे बंधु! तुम पूर्वभव के मेरे मित्र हो; स्वर्ग में हम-दोनों साथ में थे, तो अब भी मुझे आत्मकल्याण देकर इस पशुगति में से मेरा उद्धार करो!

वाह रे वाह! धन्य हाथी! तूने हाथी होकर भी आत्मा को समझने का बड़ा कार्य किया। पशु होते हुए भी तूने परमात्मा को पहिचान लिया और अपना जीवन सार्थक किया।

हाथी को अचानक शांत हुआ देखकर लोग आश्चर्यचकित हो गये—अरे, यह हुआ कैसे? भरत ने हाथी पर ऐसा कौन-सा जादू कर दिया?—कि वह अचानक ही शांत हो गया!

भरत हाथी पर बैठकर नगरी में आया, और हाथी को गजशाला में रखा; महावत लोग उसकी खूब सेवा करते हैं। उसे प्रसन्न रखने के लिये वाजिंत्र बजाते हैं, उसके लिये लड्डू बनवाते हैं, उसे उत्तम शृंगार से सजाते हैं;—परंतु आश्चर्य की बात यह है कि हाथी अब कुछ खाता नहीं, वाजिंत्र या शृंगार पर भी ध्यान नहीं देता, सोता भी नहीं, वह बहुत उदास रहता है; क्रोध भी नहीं करता। अकेला-अकेला आँखें बंद करके शांत होकर बैठा रहता है, और आत्महित का ही चिंतन किया करता है।—इसप्रकार बिना खाये-पिये एक दिन गया, दो दिन गये, चार दिन बीत चुके... तब महावत लोग चिंता में पड़ गये और श्रीराम के पास आकर कहा—हे देव! यह हाथी चार दिन से कुछ खाता भी नहीं, सोता भी नहीं, तूफान भी नहीं करता; पूरे दिन शांत होकर बैठा रहता है, और कुछ ध्यान किया करता है।—तो उसे मनाने के लिये हम क्या करें? उसे रीझाने के लिये हम बहुत प्रयत्न करते हैं, हम उसे प्रेम से बुलाते हैं किंतु वह सुनता ही नहीं, अच्छे-अच्छे मिष्ट भोजन खिलाते हैं तो वह खाता भी नहीं। मालूम नहीं पड़ता कि उसके मन में क्या है? बड़े-बड़े गजवैद्यों को बुलवाया, किंतु वे भी हाथी के रोग को नहीं जान पाये। हे स्वामी! इस हाथी के द्वारा ही अपने सारे सैन्य की शोभा है। ऐसा उत्तम बलवान हाथी, उसे अचानक यह क्या हो गया! वह हमारी समझ में नहीं आता। इसलिये उसका कुछ उपाय करो!

हाथी का ऐसा हाल सुनकर, राम और लक्ष्मण भी चिंता में पड़ गये।

उसी समय अचानक एक सुंदर प्रसंग बना।—क्या हुआ?

अयोध्यापुरी में दो केवली भगवंत का आगमन हुआ... उनके नाम देशभूषण और कुलभूषण। राम-लक्ष्मण ने वनवास के समय इन दोनों मुनिवरों का उपद्रव दूर करके बहुत भक्ति की थी, और उसी समय दोनों मुनिवरों को केवलज्ञान प्रगट हुआ था। वे ही जगत के जीवों का कल्याण करते-करते अयोध्यानगरी में पधारे। भगवान के पधारने से उसारी नगरी में आनंद-आनंद छा गया। सब लोग हर्षपूर्वक उनके दर्शन करने को जाने लगे... राम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न भी त्रिलोकमंडन हाथी पर बैठकर भगवंतों के दर्शन करने को आये; भक्ति से दर्शन करके धर्मोपदेश सुनने लगे। भगवान ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग बतलाकर उसका अद्भुत उपदेश दिया। उसे सुनकर सब लोग बहुत आनंदित हुए।

त्रिलोकमंडन-हाथी के भी आनंद का पार नहीं था। वह भी केवली भगवान के दर्शन

से बहुत ही प्रसन्न हुआ, और धर्मोपदेश सुनकर उसका चित्त संसार से उदास हो गया। उसने अपूर्व आत्मशांति प्राप्त की, और भगवान को नमस्कार करके श्रावक के व्रतों को अंगीकार किया।—'वाह, हाथी भैया! धन्य है तुमको! तुमने आत्मा को पहिचानकर तुम्हारा जीवन सुशोभित किया है! वास्तव में तुम पशु नहीं, परंतु देव हो, धर्मात्मा हो, देवों से भी महान हो।

बालकों, देखो जैनधर्म का प्रताप! एक हाथी जैसा पशु भी जैनशासन को पाकर कैसा महान हो गया! तो ऐसे महान जैनधर्म को पा करके तुम भी हाथी की तरह बहादुर होकर आत्मा की पहिचान करना, और उत्तम वैराग्यजीवन जीना।

भगवान का उपदेश सुनने के बाद महाराजा लक्ष्मण ने प्रश्न किया है भगवन्! यह त्रिलोकमंडन हाथी प्रथम गजबंधन तोड़कर क्रोधित हुआ, और फिर भरत को देखकर अचानक शांत हो गया,—उसका क्या कारण? भरत को भी उस पर प्रेम क्यों आता है? वह कृपा करके कहो।

तब देशभूषण केवली ने कहा—यह हाथी प्रथम तो लोगों की भीड़ देखकर मदोन्मत्त हुआ और क्षोभ को पाया, इसलिये बंधन तोड़कर भागा; और भरत को देखकर शांत हो गया उसका कारण यह है कि भरत का जीव और हाथी का जीव दोनों पूर्व के भव में मित्र थे। सुनो, उनके पूर्वभव—

[भरत और हाथी के पूर्वभव]

भरत और त्रिलोकमंडन-हाथी दोनों का जीव बहुत भव पहले भगवान ऋषभदेव के समय में चंद्र और सूर्य नाम के दो भाई थे। कुमार्ग का सेवन करके चूहा-मोर-तोता-सर्प-हाथी-मेंढ़क-बिल्ली-मुर्गा आदि अनेक पशुओं के भव धारण किये, और दोनों ने एक-दूसरे को कई बार मारा, कई बार भाई हुए, फिर पिता-पुत्र भी हुए। इसप्रकार भवभ्रमण करते-करते कितने ही भवों के पश्चात् भरत के जीव ने तो जैनधर्म को पाया और मुनि होकर छठवें स्वर्ग में गया।

इस हाथी का जीव भी पूर्वभव में वैराग्य से मृदुमति नाम का मुनि हुआ था; दूसरे एक महाऋद्धिधारी मुनिराज बहुत गुणवान और तपस्वी थे। उन्होंने चातुर्मास में चार महीने का उपवास किया था, और चौमासा पूर्ण होने पर अन्यत्र विहार कर गये। हाथी का जीव—मृदुमति

मुनि जब गाँव में गये, तब भूल से लोगों ने इन्हें ही महातपस्वी समझ लिया और उनका सम्मान करने लगे; उस मृदुमति के ख्याल में आ गया कि ये लोग भ्रम से मुझे ही ऋद्धिधारी-तपस्वी-मुनि समझकर मेरा आदर कर रहे हैं।—ऐसा जानते हुए भी मानवश उसने लोगों को वास्तविक बात न दिखलायी—कि वे तपस्वी मुनिराज तो दूसरे थे, और मैं दूसरा हूँ।—इसप्रकार मान के शल्यपूर्वक मायाचार किया; वह मायाचार उसे तिर्यंच गति का कारण हुआ। वहाँ से मरकर, मुनिपना के तप के कारण प्रथम तो वह छठवें स्वर्ग में गया। भरत का जीव भी वहीं था। वे दोनों मित्र थे। उनमें से एक तो अयोध्या का राजपुत्र यह भरत हुआ, और दूसरा जीव मायाचार के कारण यह हाथी हुआ है। हाथी का अत्यंत मनोहर रूप देखकर लंका के राजा रावण ने उसे पकड़ा, और उसका नाम त्रिलोकमंडन रखा। रावण को जीतकर राम-लक्ष्मण उस हाथी को यहाँ लेते आये। पूर्वभव के मित्रों का यहाँ मिलन हुआ और पूर्वभव के संस्कार के कारण भरत को देखते ही हाथी शांत हो गया; उसे जातिस्मरण हुआ है और अपने पूर्वभवों का वर्णन सुनकर संसार से अत्यंत भयभीत होकर उसे वैराग्य जागृत हुआ है; अब आत्मा की साधना में उसने अपना चित्त लगाया है, और श्रावक के व्रत अंगीकार किये हैं।

देशभूषण केवली की सभा में अपने पूर्वभवों की बात सुनकर वैरागी भरत ने वहीं पर उसी समय जिनदीक्षा अंगीकार कर ली; और बाद में केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष पधारे। उनका मित्र हाथी भी संसार से विरक्त हुआ; उस हाथी ने भी आत्मा की पहचान करके श्रावक के व्रत अंगीकार किये। वाह! हाथी का जीव श्रावक बना... पशु होने पर भी देव से भी महान बन गया! और अब अल्प काल में वह मोक्ष की प्राप्ति करेगा।

हाथी की ऐसी कथा सुनकर राम-लक्ष्मण आदि सबको आनंद हुआ। हे भव्य पाठक! तुम्हें भी आनंद हुआ न?—हाँ!—तो फिर तुम भी हाथी की तरह अपने आत्मा को जिनधर्म की आराधना में जोड़ना, और मान-माया के भावों को छोड़ना।

हाथी और भरत के पूर्वभव की बात सुनकर राम-लक्ष्मण आदि सब आश्चर्यचकित हुए। भरत के साथ एक हजार राजा दीक्षा लेकर मुनि हुए। भरत की माता कैकेयी, जिनधर्म की परम भक्त वह भी वैराग्य पाकर अर्जिका हुई, उसके साथ अन्य तीन सौ स्त्रियों ने भी पृथ्वीमति माता के पास दीक्षा ग्रहण की।

त्रिलोकमंडन हाथी के हृदय में तो केवली भगवान के दर्शन से आनंद का सागर उछल रहा है। अपने पूर्वभवों का वर्णन सुनकर वह अतिशय उपशांत हुआ है। सम्यग्दर्शन सहित वह हाथी वैराग्य से रहता है और श्रावक के व्रतों का पालन करता है, पन्द्रह-पन्द्रह दिन के या एक-एक मास के उपवास करता है; अयोध्या के श्रावकजन बहुत ही वात्सल्यपूर्वक शुद्ध आहार-पानी द्वारा उसको पारना कराते हैं। ऐसे धर्मात्मा हाथी को देखकर सबको उस पर बहुत प्रेम आता है। तप करने से धीरे-धीरे उसका शरीर निर्बल होने लगा, और अंत में समाधिपूर्वक धर्मध्यान करते-करते देह का त्याग करके वह स्वर्ग में गया और अल्पकाल में भगवान बनकर मोक्ष में जायेगा। एक हाथी की कहानी पूर्ण हुई।

❀ बालकों! सच कहना—हाथी की कथा तुम्हें कैसी पसंद आयी?

❀ वाह भाई वाह! बहुत ही पसंद आयी! अब दूसरे हाथी की कथा भी कहो जी!

❀ अच्छा, भैया! दूसरे हाथी की भी कथा जरूर कहेंगे। उसे तुम प्रेम से पढ़ना। पढ़कर तुम भी हाथी जैसा बनना।—हाथी जैसा तूफान नहीं हाँ—किंतु—हाथी जैसा धर्मात्मा होना... आत्मा को पहिचानना और मोक्ष को साधना।

पूर्णता के लक्ष से सच्चा प्रारंभ

पूर्णता के लक्ष से जो प्रारंभ हो, वही सच्चा प्रारंभ है। पूर्णता अर्थात् सर्वज्ञता, उस सर्वज्ञता के निर्णयपूर्वक ही मोक्षमार्ग का सच्चा प्रारंभ होता है। सर्वज्ञस्वरूप का जो निर्णय करता है, वह राग को कदापि धर्म नहीं मानता, क्योंकि सर्वज्ञता के साथ राग कभी नहीं होता; जहाँ सर्वज्ञता होती है, वहाँ वीतरागता ही होती है। इसलिये सर्वज्ञता के लक्षपूर्वक जो मोक्ष साधने को चला, वह साधक समस्त रागभावों से पृथक् हुआ है। सर्वज्ञस्वरूप का जो स्वीकार नहीं करता, वह अपने को रागस्वरूप ही अनुभव करता है, और राग के अनुभव द्वारा वीतरागमार्ग का प्रारंभ कभी नहीं हो सकता। राग से भिन्न ऐसी ज्ञान अनुभूति से ही मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा

कोटि उपायों से भी सम्यग्ज्ञान करो।
धन-वैभवादि सुख के लिये अकिंचित्कर हैं।

दुर्लभ मनुष्यत्व और जिनवाणी का श्रवण पाकर आत्मज्ञान करना चाहिये। जीव को धन-वैभवादि सुख के लिये निरर्थक हैं, एक सम्यग्ज्ञान ही सुख का कारण है, और वही अपना स्वरूप है। इसलिये कोटि उपायों से भी स्व-पर का भेदज्ञान करके अंतर में सम्यग्ज्ञान प्रकट करो—

धन-समाज-गज-बाज-राज तो काज न आवै,
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै।
तास ज्ञान को कारण स्व-पर विवेक बखानौ,
कोटि उपाय बनाय भव्य! ताको उर आनौ॥७॥

हे जीव! तेरे हित के लिये धन-समाज, कुटुम्ब-परिवार, हाथी-घोड़े, मोटर-बंगला, और राज्य-प्रधानपद आदि तो निरर्थक हैं, और वे कायम रहनेवाले भी नहीं हैं। तेरे हित का कारण तो सम्यग्ज्ञान ही है। वही ज्ञान आत्मा आत्मा का स्वरूप है, अतः यह ज्ञान होने के पश्चात् अविचल रहता है। स्व-पर के विवेकरूपी भेदज्ञान ऐसे सम्यग्ज्ञान का कारण कहा गया है। शास्त्रों ने इस भेदज्ञान को सराहा है, इसकी प्रशंसा की है। अतः हे भव्य जीवो, तुम कोटि उपायों से भी इस भेदज्ञान को अंतर में प्रगट करो, जिससे तुम्हारा हित और मोक्ष होगा।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह क्या चीज़ है? उसको पहचानना चाहिये। शरीर अजीव है, पुण्य-पाप तो आस्रव हैं। उससे भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा को पहचानना चाहिये। आत्मा आनंदकंद जिनेन्द्र है; कोटि उपाय करके भी, चाहे जैसी प्रतिकूलता आये, उसको सहकर भी स्व-पर के भेदज्ञान से आत्मा को पहचानो। समयसार में तो ऐसा कहा है कि तू मरकर भी चैतन्यतत्त्व को जानने का कौतूहली हो और शरीरादि से भिन्न आत्मा को अनुभव में ग्रहण कर। 'मरकर भी' ऐसा कहकर उत्कृष्ट प्रयत्न की बात की है, इसका तात्पर्य यह है कि मृत्यु जैसी

प्रतिकूलता आने पर भी उसकी परवाह किये बिना, चैतन्यतत्त्व को पहचानने का उत्कृष्ट रस जागृत कर।

अरे! यदि अपने आत्मा को न पहचाना तो कोटि-अरबों रुपयों हों या अच्छे पुत्र-परिवार हो तो भी क्या? समाज में मान-प्रतिष्ठा हो और लोग वाहवाही करें, इससे आत्मा को क्या लाभ? अरे! दूसरी चीजें तो उपयोग में नहीं आती, किंतु अपना शुभभाव भी आत्मा के हित में कार्यकारी नहीं होता। हित का कारण तो एक ही है कि राग से पार आत्मा का सच्चा ज्ञान करना। यह ज्ञान कोई बाहरी उपाय से प्राप्त नहीं होता, परंतु वह तो आत्मा का ही स्वरूप है और आत्मा के साथ सदा मोक्ष में भी अविचलरूप रहता है। राग और संयोग तो छूट जाते हैं क्योंकि वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है, वह कभी नहीं छूटता। स्व-पर के भेदज्ञान का अभ्यास करने से ऐसा सम्यग्ज्ञान होता है। इसलिये हे भाई! कोटि उपायों करके भी ऐसे ज्ञान को अंतर में प्रगट करो! भले ही बाहर में अनेक प्रकार की हजारों प्रतिकूलताएँ हों, धन न हो, कुटुंब न हो, शरीर भी अच्छा न हो, समाज में मान-प्रतिष्ठा न हो, तिरस्कार होता हो—इनका सबका लक्ष छोड़कर, उन सबसे भिन्न ऐसे अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहचानने का सर्व प्रकार से उद्यम करो। कोटि उपाय करके भी आत्मा को पहचानो, मतलब कि कोटि प्रतिकूलताओं के बीच भी धैर्य न छोड़कर निरंतर आत्म-पहचान के प्रयत्न में लगे रहो। बाहरी कोई भी प्रतिकूलता आत्मा को पहचानने में बाधक नहीं हो सकती। इसीप्रकार बाह्य धन आदि की अनुकूलता आत्मा को पहचानने में सहायक भी नहीं हो सकती। बाहरी प्रतिकूलता या अनुकूलता—इन दोनों से आत्मा अलग है। ऐसी भिन्नता के अभ्यास से स्व-पर का भेदज्ञान करते-करते सम्यग्ज्ञान होता है। वही ज्ञान तुझे शरणरूप है; दूसरे जन्म में या मोक्ष में भी वही तेरे साथ रहेगा, क्योंकि वह आत्मा का स्वभाव ही है।

धन, शरीर, राज्य, परिवार, ये कोई आत्मा की वस्तुएँ नहीं हैं, यह तो बाहरी चीज़ें हैं। जब राग भी आत्मस्वरूप की वस्तु नहीं, तब फिर दूसरों की तो क्या बात? आत्मस्वरूप की चीज तो सम्यग्ज्ञान है। सम्यग्ज्ञान कहने से अनंत गुण भी साथ में ही समझना चाहिये। भाई! तेरा चेतनस्वरूप तुझे सुख का कारण है। जड़ लक्ष्मी का ढ़ेर तुझे सुख का कारण नहीं है, उसका लक्ष करके यदि तू ममता करेगा तो वह तुझे पाप का निमित्त बनेगा। कदाचित् दानादि में

राग की मंदता करेगा तो वह राग भी कहीं आत्मा को शरण देनेवाला नहीं है। मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा उससे भिन्न हूँ, ऐसा जानकर आत्मा में उपयोग जोड़ने से जो अपूर्व अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है, यह आनंद देने की शक्ति जगत के किसी पदार्थ में नहीं है। धन के ढ़ेर आत्मा के हित का कारण नहीं होता एवं निर्धनता कहीं आत्मा के हित में बाधक भी नहीं होती। अरे, जहाँ यह शरीर भी आत्मा का नहीं है, तब फिर दूसरों की क्या बात? ज्ञानी तो शरीर को एक वस्त्र समान अपने से भिन्न मानता है। शरीररूपी वस्त्र फट जाये, टूट जाये, बदल जाये, इससे कभी आत्मा फटता, टूटता या मरता नहीं। चारों ओर की शारीरिक पीड़ा के बीच भी जिसमें विश्राम लेने से परम शांति का अनुभव हो—ऐसा मैं आत्मा हूँ। बाहर में शरीर जलता हो और भीतर आत्मा आनंद-समुद्र में परम शांति अनुभव करता हो-क्योंकि शरीर भिन्न है, आत्मा भिन्न है। देखो, शत्रुंजय पर पांडव कैसे ध्यान में खड़े हैं? बाहर में शरीर तो जलता है लेकिन अंतर में वे आत्मा की शांति में जम गये हैं। ऐसे जम गये है कि शरीर के जलानेवाले के प्रति क्रोध का विकल्प भी नहीं होता। अरे, साथ के दूसरे भाईयों का क्या होता है, यह देखने की वृत्ति भी नहीं होती। आत्मा की परम शांति में लीन होकर केवलज्ञान प्रगट करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। वाह! देखो आत्मा की शक्ति! एक ही समय में शरीर जलता है, आत्मा शीतल शांति में रहता है।—इसप्रकार दोनों तत्त्वों की क्रिया बिल्कुल भिन्न है। ऐसा भेदज्ञान करके आत्मा का सम्यग्ज्ञान करना चाहिये। ऐसा सम्यग्ज्ञान ही सच्चा विवेक है। देह और आत्मा एक ही हैं, अथवा शुभराग जीव को ज्ञान का साधन है—ऐसी बुद्धि में तो बड़ा अविवेक है, उसमें आत्मा का अहित है। भले ही बाहर में अन्य अनेक प्रकार के सयानापन दिखाता हो परंतु जिसकी देह में भिन्न और राग से भिन्न आत्मा का ज्ञान नहीं है, वह जीव परमार्थ से अविवेकी है, उसे आत्मा का हित नहीं होता। और किसी को भले ही बाहरी सयानापन कदाचित् न भी आता हो लेकिन अंतर में स्व-पर की भिन्नता के विवेक से जिसने आत्मा का सम्यग्ज्ञान किया है, वह महान विवेकी है। सम्यग्ज्ञान ही सच्चा विवेक है, उसमें ही आत्मा का हित है।

भले ही बड़ा राज-पाट हो परंतु यदि आत्मा के हित की परवाह न करे, मांस खाये, शिकार करे तो ऐसे पापी जीव नर्क में जायेंगे, तब ये राजपाट-वैभव उनके लिये किस काम के? हजारों देव जिसकी सेवा करते थे, ऐसा सुभौम चक्रवर्ती भी आत्मा को भूलकर विषय-

कषाय में तीव्र लीनता के कारण से नर्क में गया। वहाँ उसको कोई भी सहायक न हुआ, तब फिर दूसरों की क्या बात ? आत्मा के सिवाय और सब कुछ अशरण है, ऐसा जानकर, राजपाट आदि छोड़कर अंतर में चैतन्य के शरण में अनेक जीवों ने आत्मा का हित साधा है। भरतराज जैसे चक्रवर्ती छह खंडों के साम्राज्य में कहीं भी सुख नहीं मानते थे। उससे भिन्न आत्मा के चैतन्यसुख को जानते थे, इसलिये राजपाट छोड़कर, आत्मा में लीन होकर मुक्ति प्राप्त की। इसप्रकार ज्ञानी को बाहर में राजपाट हो, फिर भी उससे भिन्न मैं आत्मा हूँ और मेरे आत्मा में मेरे अनेक गुणों का साम्राज्य है, ऐसा भेदज्ञान उसे रहा करता है। राजपाट को आत्मा से अलग मानकर ज्ञानी का ज्ञान उससे विरक्त ही रहता है। राज और राग दोनों से पृथक् परिणमनेवाला ज्ञान आत्मा के स्वभाव में एकत्वरूप हुआ है, वह अतीन्द्रियशांति सहित है। अहो! इस सम्यग्ज्ञान की महिमा अपूर्व है। वही सर्वत्र सदाकाल जीव को कारणरूप है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी जीव को आत्महित के लिये उपयोगी नहीं होता। मृत्यु के समय हजारों सेवक तथा स्त्री-पुत्रादि सेवा में उपस्थित हों, स्वर्ग में बड़े देवों के पास हजारों अन्य देव दास होकर सेवा करते हों—पर यह सेवा किसकी ? बाहर में शरीर की सेवा है; लेकिन भीतर में अज्ञान के कारण आत्मा मिथ्याभावों से दु:खी हो रहा है, उसको दूसरा क्या करें ? क्या नौकर-चाकर, स्त्री-पुत्र, धन के ढ़ेर या देव उनमें से कोई भी इस आत्मा को अज्ञान के दु:ख से मुक्त करने में समर्थ हैं ?—नहीं; अत: हे जीव! तू सोच कि यह कोई भी चीज आत्मा की शांति के लिये उपयोगी नहीं है; तब फिर उसके अतिरिक्त अपने पास ऐसी कौन सी चीज़ है कि जो अपनी शांति के लिये सर्वदा हर एक प्रसंग पर काम में आवे! ऐसा तो केवल सम्यग्ज्ञान है; वह स्वयं शांतिस्वरूप होने स किसी भी प्रसंग में जीव को शांति का देनेवाला है। वह अपनी ही वस्तु है। हे भाई! ऐसे सम्यग्ज्ञान को ध्यान में लेकर उसका तू उद्यम कर। थोड़ा सा उद्यम करके तू मत रुकना, कोटि उपायों से भी ऐसा सम्यग्ज्ञान करना।

अहो! मेरा तो ज्ञान है, ज्ञान ही मैं हूँ। ज्ञान के सिवा और कुछ मेरा नहीं है। ज्ञान उसको कहते हैं कि जिसमें राग का अंश भी न हो। राग के कुछ भी अंश को ज्ञान अपने में नहीं मिलाता। एक ओर ज्ञान ही आत्मा, दूसरी ओर राग और राग का फल—यह सब ज्ञान से भिन्न-आत्मा से भिन्न-इसप्रकार दो विभाग करके भेदज्ञान करना, यही सम्यग्ज्ञान का उपाय है।

शुभाशुभ राग पुण्य-पाप या उनके फल ये कोई अपना आत्मरूप नहीं, इसलिये ये कोई भी आत्मा के हित में उपयोगी नहीं होते। उन सबसे पार अपना ज्ञानस्वरूप है, वही अपना निजरूप है। उसमें शुभाशुभ विकल्प नहीं है। ऐसा निजरूप ज्ञान ही आत्मा को सर्वत्र शांतिदायी है। ऐसा सम्यग्ज्ञान ही आत्मा की अपनी वस्तु है। वह आत्मा के स्वभाव से उत्पन्न हुआ है, इसलिये आत्मा के साथ वह अचल रहता है। उसके साथ सम्यक् श्रद्धा-शांति-सुख-वीतरागता आदि अनंत स्वभाव हैं। लेकिन राग या पुण्य, वे कहीं ज्ञान में समाविष्ट नहीं होते। वे ज्ञान से भिन्न हैं, परभाव हैं और दूसरी क्षण ही वे आत्मा से अलग हो जाते हैं; आत्मा के साथ वे अचल रहनेवाले नहीं हैं, क्योंकि वे आत्मा का निजरूप नहीं हैं।

अरे, चैतन्य वस्तु अपने भीतर अनंत गुण सहित विद्यमान है, वही मेरा निजरूप है। मेरे चैतन्यरूप में शुभविकल्प का एक अंश भी समाविष्ट नहीं हो सकता; पुण्य भी आत्मा के हित में उपयोगी नहीं होता। इसप्रकार हे भव्य जीव! तू शुभाशुभराग से भी रहित ऐसे चैतन्यमय निजरूप को पहचान। स्व-पर के विवेक में राग को भी चैतन्य से भिन्न जानने का हुआ। अहो, ऐसा स्व-पर का भेदज्ञान प्रशस्य है। सर्व संतों ने भेदज्ञान की प्रशंसा की है। कैसा भेदज्ञान? कि जो उपयोग में राग के किसी भी अंश को न मिलाये, राग से सर्वथा अलग होकर उपयोग अंतर्मुख होकर, उपयोग में ही तन्मयता से स्थित हो—ऐसा भेदज्ञान अत्यंत प्रशंसनीय है। ऐसा भेदज्ञान जीव को अपूर्व आनंददायी होकर प्रकटता है, वह परम हितरूप मोक्ष का कारण है। ऐसे भेदज्ञान के बिना जीव शुभराग करे तो भी उसमें आत्मा का जरा भी हित नहीं है; अपितु उसमें संतोष माननेवाला जीव मनुष्यभव को हार जायेगा।

लक्ष्मी अरु अधिकार बढ़ते, बढ़ा क्या?-यह तो कहो,
क्या कुटुंब या परिवार की जो वृद्धि इसको सुख कहो?
यह वृद्धि है संसार की, नरदेह को खो बैठना;
—उसका विचार नहीं अरेरे! एक क्षण तुमको हुआ।

रे भाई! लक्ष्मी आदि की ममता की आड़ में यदि तू आत्मा का हित साधने को भूल जायेगा तो ऐसे दुर्लभ मानव अवतार को तू व्यर्थ खो देगा। इन लक्ष्मी आदि की वृद्धि में आत्मा का कुछ भी सुख नहीं है। अरे, पुण्य की वृद्धि, यह भी संसार ही है; उसमें भी आत्मा का सुख

नहीं है। अत: हे भ्रात! अब तो ऐसा उद्यम कर कि जिससे संसार का छेद हो और आत्मा के सुख की प्राप्ति हो। सम्यग्ज्ञान से आत्मा को पहिचानने का शीघ्र उद्यम कर। आत्मा का भेदज्ञान-पर्यायरूपी जो सुपुत्र है, वही आत्मा के लिये कल्याणकारी है। बाहरी सुपुत्र कभी आत्मा को शरणरूप नहीं होता। संयोग तो चलायमान ही हैं, वे चले ही जायेंगे; सुबह का देखा शाम को नहीं दिखेगा। सुबह में जिसका राज्याभिषेक होता हुआ देखते हैं—शाम को उसी की चिता जलती दिखाई देती है। यह संयोग कभी आत्मा की चीज़ नहीं है। ज्ञान आत्मा का निजस्वरूप होने से आत्मा के साथ अचल रहता है। शुभराग भी चलायमान है, वह भी अचल नहीं—स्थिर नहीं—शरणरूप नहीं—आत्मा का निजरूप नहीं। राग से भिन्न आत्मा के ध्यान से जो ज्ञानपरिणति हुई, वह ज्ञान ही अचल है। वह आत्मा का निजरूप होने से इस लोक में तथा परलोक में भी यथास्वरूप कायम रहेगा। आत्मा स्वयं अपने स्वभाव से ही ज्ञानरूप हुआ, वह अब कैसे छूटेगा? वह ज्ञान सदा के लिये आत्मा से अभेद रहकर आत्मा को परम सुख देता है। अत: हे जीव! तू सम्यग्ज्ञान प्रगट कर। सर्वप्रकार के उद्यम से बारंबार भेदज्ञान के अभ्यास से अंतर्मुख होकर तू ज्ञानस्वरूप आत्मा का अनुभव कर।

(छहढाला-प्रवचन से : शेष भाग आगामी अंक में पढ़िये।)

पुण्यफल को छोड़कर धर्मीजीव मोक्ष को साधता है

प्रभो! दिव्यध्वनि द्वारा अपने आत्मा के अचिंत्य निधान को प्रगट करके दिखलाया, तो अब 'इस जगत में ऐसा कौन है जो इस चैतन्य-निधान के पास राजपाट के निधान को तृणसम समझकर न छोड़े?—और चैतन्यनिधान को न साधे? अहा, चैतन्य के आनंदनिधान को जिसने देखा, उसे राग के फलरूप बाह्य-वैभव तो तृण के समान दिखता है।

पुत्रे राज्यमशेषमर्थिषु धनं दत्त्वाऽभयं प्राणिषु।
प्राप्ता नित्यसुखास्पदं सुतपसा मोक्षं पुरा पार्थिवाः।
मोक्षस्यापि भवेत्ततः प्रथमतो दानं निधानं बुधैः।
शक्त्या देयमिदं सदातिचपले द्रव्ये तथा जीविते॥१६॥

यह जीवन और धन दोनों अत्यंत क्षणभंगुर हैं—ऐसा जानकर चतुर पुरुषों को सदा शक्ति अनुसार दान करना चाहिये, क्योंकि मोक्ष का प्रथम कारण दान है। पूर्व में अनेक राजाओं ने याचकजनों को धन देकर, सब प्राणियों को अभय देकर और समस्त राज्य पुत्र को देकर सम्यक्तप द्वारा नित्य सुखास्पद मोक्ष पाया।

देखिये, यहाँ ऐसा बतलाते हैं कि दान के फल में धर्मी जीव को राज्य-सम्पदा वगैरह मिले, उसमें वह सुख मानकर मूर्च्छित नहीं होता, परंतु दानादि द्वारा उसका त्याग करके मुनि होकर मोक्ष को साधने चला जाता है।

जिसप्रकार चतुर किसान बीज की रक्षा करके बाकी का अनाज भोगता है, और बीज बोता है, उसके हजारों गुने दाने पकते हैं, उसीप्रकार धर्मी जीव पुण्यफलरूप लक्ष्मी वगैरह वैभव का उपभोग धर्म की रक्षापूर्वक करता है, और दानादि सत्कार्यों में लगाता है—जिससे उसका फल बढ़ता जाता है और भविष्य में तीर्थंकरदेव का समवसरण तथा गणधरादि संत-धर्मात्माओं का योग वगैरह धर्म के उत्तम निमित्त मिलते हैं, वहाँ आत्मस्वरूप को साधकर, बाह्य परिग्रह छोड़कर, मुनि होकर, केवलज्ञानरूप अनंत आत्मवैभव को प्राप्त करता है।

पुण्य के निषेध की भूमिका में (अर्थात् वीतरागभाव को साधते-साधते) ज्ञानी को अनंतगुना पुण्य बँधता है। पुण्य की रुचिवाले अज्ञानी को जो पुण्य बँधे उससे, पुण्य का निषेध करनेवाले ज्ञानी की भूमिका में जो पुण्य बँधे, वह अलौकिक होता है;—जिससे तीर्थंकर-पद मिले, चक्रवर्ती-पद मिले, बलदेव-पद मिले, ऐसा पुण्य आराधक जीव को ही होता है; राग की रुचिवाले विराधक को ऐसा पुण्य नहीं बँधता। और उस पुण्य का फल आये, तब भी ज्ञानी उन संयोगों को अध्रुव—क्षणभंगुर बिजली जैसे चल जानकर उनका त्याग करता है, और ध्रुव ऐसे सुखधाम आत्मा को साधने हेतु सर्वसंगत्यागी मुनि होता है और मोक्ष को साधता है। पहले से ही दान की भावना द्वारा राग घटाया था, उससे आगे बढ़ते-बढ़ते सर्वसंग छोड़कर मुनि होता है। परंतु पहले से ही गृहस्थपने में दानादि द्वारा थोड़ा भी राग छोड़ने का जिससे नहीं बनता, और रागरहित स्वभाव क्या है? वह लक्ष्य में भी नहीं लेता, वह सर्व राग को छोड़कर मुनिपना कहाँ से लेगा?—इस अपेक्षा से मोक्ष का प्रथम कारण दान कहा गया है।

ज्ञानी जानता है कि, एक तो लक्ष्मी इत्यादि बाह्य संयोग में मेरा सुख जरा भी नहीं; फिर संयोग क्षणभंगुर है, और उसका आना-जाना तो पूर्व के पुण्य-पाप के आधीन है। पुण्य हो तो, दान में खर्च करने से लक्ष्मी समाप्त नहीं होती; और पुण्य समाप्त हो तो लाख उपाय द्वारा भी वह नहीं रहती।—ऐसा जानते हुए वह महापुरुष धन वगैरह छोड़कर मुनि होता है; और सर्व परिग्रह छोड़कर मुनि न हो सके, तब तक उसका उपयोग दानादि में करता है। इसप्रकार त्याग अथवा दान—ये दो ही लक्ष्मी के उपयोग के उत्तम मार्ग हैं। अज्ञानी तो परिग्रह में सुख मानने से उसकी ममता करके उसे नित्य रखना चाहता है। 'जितनी बढ़े सामग्री, उतना बढ़े सुख'—ऐसी अज्ञानी की भ्रमणा है। ज्ञानी जानता है कि जितना परिग्रह छूटे, उतना सुख है; मात्र बाह्यत्याग की बात नहीं; अन्दर का मोह छूटे, तब परिग्रह छूटा कहने में आता है।

अहा, चैतन्य का आनंदनिधान जिसने देखा, उसे राग के फलरूप बाह्य वैभव तो तृणतुल्य लगता है। ऋषभदेव भगवान की स्तुति में पद्मनंदीस्वामी कहते हैं कि अहो नाथ! दिव्यध्वनि द्वारा अपने आत्मा के अचिंत्य निधान को प्रगट करके दिखाया, तो अब इस जगत में ऐसा कौन है कि इस निधान लेने के लिये राजपाट के निधान को तृणसमान समझकर न त्यागे?—और चैतन्यनिधान को न साधे! बाहुबली जैसे बलवान योद्धा राजसंपदा छोड़कर

इसप्रकार चले गये कि पीछे मुड़कर भी नहीं देखा कि राज्य का क्या हाल है ! चैतन्य की साधना में अडिगरूप से ऐसे लीन हुए कि खड़े-खड़े ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ जैसे चक्रवर्ती-तीर्थंकर एवं भरत-चक्रवर्ती, पांडव आदि महापुरुष भी क्षणमात्र में राज्य-वैभव छोड़कर मुनि हुए; जीवन में प्रारंभ से ही भिन्नता की भावना का घोलन था। वे राग और राज से पहले ही से अलिप्त थे, इसलिये क्षणभर में ही जिसप्रकार सर्प काँचली उतारता है, उसीप्रकार वे राज्य और राग दोनों को छोड़कर मुनि हुए और उन्होंने स्वरूप का साधन किया। अज्ञानी को तो साधारण परिग्रह की ममता छोड़नी भी कठिन पड़ती है। चक्रवर्ती की संपदा की तो क्या बात ! परंतु उन्होंने चैतन्यसुख के सामने उसे भी तुच्छ समझकर एक क्षण में छोड़ दी। इसलिये कवि कहते हैं कि—

छ्यानवे हजार नार छिनकमें दीनी छार,
अरे मन! तो निहार, काहे तू डरत है?
छहों खंड की विभूति छांड़त न बेर कीन्हीं,
चमू चतुरंगन सों नेह न धरत है,
नौ निधान आदि जे चौदह रतन त्याग,
देह सेती नेह तोड़ वन विचरत है,
ऐसो विभौ त्यागत विलंब जिन कीन्हीं नाहीं,
तेरे कहो केती निधि? सोच क्यों करत है!

अरे, लक्ष्मी और जीवन अत्यंत ही अस्थिर है, उसका क्या भरोसा। लक्ष्मी का दूसरा नाम 'चपला' कहा है, क्योंकि वह इंद्रधनुष जैसी चपल है—क्षणभंगुर है। लक्ष्मी कब चली जावेगी और जीवन कब समाप्त हो जावेगा, इसका कोई भरोसा नहीं; कल का करोड़पति अथवा राजा-महाराजा आज भिखारी बन जाता है, अभी का निरोगी दूसरी क्षण में मर जाता है, सुबह जिसका राज्याभिषेक देखा-संध्या समय उसकी ही चिता जलती दिखती है। भाई, ये तो सब अध्रुव हैं, इसलिये ध्रुव चैतन्यस्वभाव को दृष्टि में लेकर लक्ष्मी आदि का मोह छोड़। धर्मी श्रावक अथवा जिज्ञासु गृहस्थ अपनी वस्तु में से शक्ति अनुसार याचकों को इच्छित दान देवें। दान योग्य वस्तु का होता है, अयोग्य वस्तु का दान नहीं होता। लौकिक कथाओं में आता है कि किसी राजा ने अपने शरीर का माँस काटकर दान में दिया, अथवा कोई भक्त ने अपने पुत्र का

मस्तक काटकर दान में दिया,—परंतु यह बात धर्म से विरुद्ध है, यह दान नहीं कहलाता, यह तो कुदान है। दान देनेवालों को भी योग्य-अयोग्य का विवेक होना चाहिये। श्रावक आदरणीय धर्मात्मा आदि को आदरपूर्वक दान देवें, और अन्य दीन दुःखी जीवों को करुणाबुद्धि से दान देवें। धर्मी को ऐसी भावना होती है कि मेरे निमित्त से जगत में किसी प्राणी को दुःख न हो। सर्व प्राणियों के प्रति अहिंसाभावरूप अभयदान है। और साधर्मी के लिये शास्त्रदान आदि का भाव होता है।—ऐसे दान को श्रावक का मुख्य कर्तव्य कहा गया है।

प्रश्न :- मोक्ष का मूल तो सम्यग्दर्शन है, तो यहाँ दान का उपदेश क्यों दिया ?

उत्तर :- पहले तो श्रावक को सर्वज्ञ की पहचान होती है; उसके साथ श्रावक को प्रथम भूमिका में धर्म का उल्लास और दान का भाव अवश्य होता है, यह दिखाने के लिये व्यवहार से उसे भी मोक्ष का कारण कहा है। इतना राग घटाना भी जिसे नहीं रुचता, वह सर्वथा रागरहित मोक्षमार्ग में कैसे आवेगा ? वीतरागदृष्टिपूर्वक जितना राग मिटा, उतना मोक्षमार्ग है। पहले दानादि में राग घटाना सीखेगा तो आगे बढ़कर मुनिपना लेगा और मोक्ष को साधेगा। इस अपेक्षा से दान को मोक्ष का प्रथम कारण कहा है—ऐसा समझना। धर्मप्रभावना हेतु दान, यह मुमुक्षु श्रावक का हर रोज का कर्तव्य है।

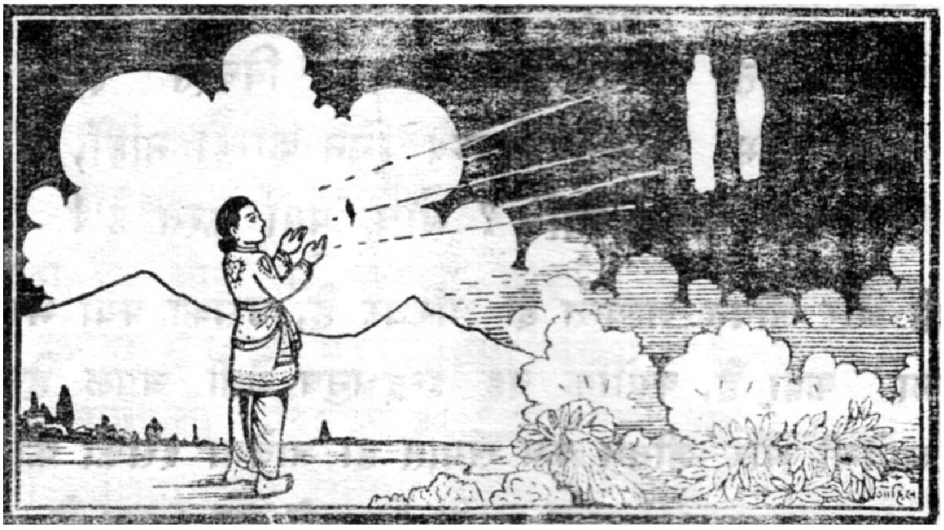

[आहारदान की भावना से मुनिवरों की प्रतीक्षा करता हुआ भरतचक्रवर्ती]

मनुष्यपना प्राप्त करके या तो मुनि हो, या दान दे

जैनधर्म का चरणानुयोग भी अलौकिक है। द्रव्यानुयोग के अध्यात्म की और चरणानुयोग के परिणाम की संधि होती है। दृष्टि सुधरे और परिणाम चाहे जैसा अशुद्ध बना रहे, ऐसा नहीं बनता। जहाँ अध्यात्म की दृष्टि हो, वहाँ देव-गुरु की भक्ति, दान, साधर्मी के प्रति वात्सल्य इत्यादि भाव सहज ही होते हैं। श्रावक के अंतर में मुनिदशा की प्रीति है अर्थात् सर्वस्व त्याग की ओर उसका लक्ष रहा करता है, और मुनिराज को देखते ही भक्ति से उसके रोमांच उल्लसित हो जाते हैं। भाई! ऐसा मनुष्य-अवतार और जिनधर्म मिला है, तो मोक्षमार्ग साधकर इसे सफल कर।

श्रावकधर्म का प्रारंभ सर्वज्ञ की पहचान से होता है। श्रावक का धर्म दिखलाते हुए मुनिराज कहते हैं कि ऐसा दुर्लभ मनुष्यपना प्राप्त करके जो मोक्ष का उद्यम नहीं करता अर्थात् मुनिपना भी नहीं लेता और दानादि श्रावकधर्म का भी पालन नहीं करता, वह तो मोहबंधन में बँधा हुआ है—

ये मोक्षंप्रति नोद्यताः सुनृभवे लब्धेपि दुर्बुद्धयः
ते तिष्ठंति गृहे न दानमिह चेत् तन्मोहपाशो दृढः।
मत्वेदं गृहिणा यथर्द्धि विविधं दानं सदा दीयतां
तत्संसारसरित्पति प्रतरणे पोतायते निश्चितं॥१७॥

ऐसा उत्तम मनुष्यभव प्राप्त करके भी जो कुबुद्धि जीव मोक्ष का उद्यम नहीं करता और गृहस्थपने में रहकर दान भी नहीं देता, उसका गृहस्थपना तो दृढ़ मोहपाश के समान है।—ऐसा समझकर अपनी शक्ति अनुसार विविध प्रकार के दान देना यह गृहस्थ का सदा कर्तव्य है। मुनि आदि सत्पात्र को दिया गया दान गृहस्थ को संसारसमुद्र से तिरने के लिये जहाज के समान है।

ऐसे मनुष्यपने को पाकर यदि शक्ति हो तो मुनि होकर मोक्ष का साक्षात् उद्यम करना

चाहिये। इतनी शक्ति न हो तो गृहस्थपने में रहकर दान तो जरूर करना चाहिये। इतना भी जो नहीं करते और संसार के मात्र पाप में ही लगे रहते हैं, वे तो तीव्र मोह के कारण संसार की दुर्गति में कष्ट उठाते हैं।—इससे बचने के लिये दान उत्तम जहाज के समान है। दान में देव-गुरु-शास्त्र के प्रसंग की मुख्यता है, जिससे उसमें धर्म का संस्कार बना रहे और राग छूटता जावे; तथा आगे जाकर मुनि होकर वह मोक्ष को साध सके। श्रावक के अन्तःकरण में मुनिदशा की प्रीति है, इसलिये हमेशा, त्याग की ओर लक्ष रहा करता है; मुनिराज को देखते ही भक्ति से उसके रोम-रोम पुलकित हो जाते हैं। मुनिपने की भावना की बातें करे और अभी राग थोड़ा भी न घटावे, लोभादि का पार न हो—ऐसे जीव को धर्म का सच्चा प्रेम नहीं है। धर्मी जीव मुनि अथवा अर्जिका न हो सके, तब तक भले ही गृहवास में रहता हो, परंतु गृहवास में रहते हुए भी उसके अंतर में संसार से अत्यंत विरक्ति बनी रहती है।

अरे, यह मनुष्य अवतार मिला है, जैनधर्म का और सत्संग का ऐसा उत्तम योग मिला है तो आत्मा को साधकर मोक्षमार्ग द्वारा उसको सफल करो। अरे, संसार के मोह में जीवन बिताते हो, उसके बदले आंतरिक प्रयत्न द्वारा आत्मा में अंतर्मुख होकर आत्मा का वैभव प्रगट करो! चैतन्यनिधान के सामने जगत के अन्य सभी निधान तुच्छ हैं। अहा, संतों ने चैतन्यनिधान को स्पष्टरूप से दिखा दिया; उसे जानकर परिग्रह छोड़कर चैतन्य-खजाने को न लेवे, ऐसा मूर्ख कौन है? चैतन्यनिधान को देखने के पश्चात् बाहर के मोह में लगा रहे, ऐसा मूर्ख कौन है? करोड़ों रुपया देने पर भी जिसके आयुष्य का एक समय भी बढ़ नहीं सकता, ऐसे इस कीमती मनुष्यजीवन को जो व्यर्थ गमाते हैं, और जन्म-मरण के अंत का उपाय नहीं करते, वे दुर्बुद्धि हैं। भाई! यह आत्मा को साधने का अवसर है। तू जितना चाहे इतना आत्मवैभव तेरे को मिले, ऐसा यह अवसर है। अरे, इस अवसर को कौन खोवे? आनंद का भंडार खुला तो आनंद को कौन न लेवे? बड़े-बड़े चक्रवर्तियों ने और छोटे-छोटे राजकुमारों ने इस चैतन्य-खजाने को लेने हेतु बाहर के खजाने को छोड़-छोड़कर वन में गमन किया और अंतर में ध्यान करके सर्वज्ञपद के अचिंत्य खजाने को खोला; इसप्रकार उन्होंने जीवन सफल किया।

इसप्रकार धर्मात्मा तो आत्मा का आनंद-खजाना कैसे बड़े, उसी में उद्यमी है। जो दुर्बुद्धि जीव ऐसा उद्यम नहीं करता, तृष्णा की तीव्रता से परिग्रह ही इकट्ठा किया करता है, उसका तो जीवन व्यर्थ है। दान के बिना गृहस्थ तो मोह की जाल में फँसे हुए के समान है।

जिसप्रकार रसना-इंद्रिया की तीव्र लोलुपी मछली जाल में फँस जाती है और दु:खी होती है, उसीप्रकार तीव्र लोलुपी गृहस्थ मिथ्यात्व-मोह की जाल में फँसा रहता है और संसारभ्रमण में दु:खी होता है। ऐसे संसार से बचने हेतु दान नौका समान है। अत: गृहस्थों को अपनी ऋद्धि के प्रमाण में दान करना चाहिये।

'ऋद्धि के प्रमाण में' का अर्थ क्या? लाखों-करोड़ों की संपत्ति में से पाँच-दस रुपया खर्चे—वह कहीं ऋद्धि के प्रमाण में नहीं कहा जा सकता। अथवा अन्य कोई करोड़पति ने पाँच हजार खर्च किये और मैं तो उससे कम संपत्तिवाला हूँ—अत: में तो उससे कम खर्च करूँ—ऐसी तुलना करके लोभ न करे। मुझे तो मेरे राग घटाने हेतु दान करना है न? उसमें दूसरे का क्या काम है?

प्रश्न :- हमारे पास अधिक संपत्ति न हो तो दान कहाँ से करें?

उत्तर :- भाई, विशेष संपत्ति होवे, वे ही दान दे सकें—ऐसी कोई बात नहीं है और तू तेरे संसार कार्यों में तो खर्च करता है कि नहीं? तो धर्मकार्य में भी उल्लासपूर्वक तेरी संपत्ति में से तेरी शक्तिप्रमाण खर्च कर। दान के बिना गृहस्थपना निष्फल है। अरे, मोक्ष का उद्यम करने का यह अवसर है। उसमें सभी राग न छूटे तो थोड़ा राग तो घटा! मोक्ष के लिये तो सभी राग छोड़ना होगा। अभी दानादि द्वारा थोड़ा राग भी तू नहीं छोड़ता तो मोक्ष का उद्यम तू किसप्रकार करेगा? अहा, इस मनुष्यपने में आत्मा में रागरहित ज्ञानदशा प्रगट करने का प्रयत्न जो नहीं करता और प्रमाद से विषय-कषायों में ही जीवन बिताता है, वह मूढ़बुद्धि मनुष्यपने को खो देता है।—बाद में उसे पश्चात्ताप होगा कि अरेरे! मनुष्यपने में हमने कुछ नहीं किया! जहाँ धर्म का प्रेम नहीं, जिस घर में धर्मात्मा के प्रति भक्ति के उल्लास से तन-मन-धन नहीं लगाया जाता, वह वास्तव में घर नहीं है परंतु मोह का पिंजरा है, संसार का जेलखाना है। धर्म की प्रभावना और दान द्वारा ही गृहस्थपने की सफलता है। मुनिपने में स्थित तीर्थंकर को अथवा अन्य महामुनियों को आहारदान देने पर रत्नवृष्टि होती है—ऐसी पात्रदान की महिमा है। एकबार आहारदान के प्रसंग में एक धर्मात्मा के यहाँ रत्नवष्टि हुई, उसे देखकर किसी को ऐसा हुआ कि मैं भी दान करूँ, जिससे मेरे यहाँ भी रत्नवृष्टि हो।—ऐसी भावनासहित आहारदान दिया, आहार देता जावे और आकाश की ओर देखता जावे कि अभी मेरे आँगन में रत्न बरसेंगे;

परंतु कुछ नहीं बरसा।—देखिये, इसे दान नहीं कहते; इसमें मूढ़ जीव के लोभ का पोषण है। धर्मी जीव दान देवे, उसमें तो उसे गुणों के प्रति प्रमोद है और राग घटाने की भावना है। पहले मूर्खतावश कुदेव-कुगुरु पर जितना प्रेम करता था, उससे अधिक प्रेम यदि सच्चे देव-गुरु के प्रति न आवे तो उसने सच्चे देव-गुरु को वास्तव में पहचाना ही नहीं, माना ही नहीं, वह देव-गुरु का भक्त नहीं; उसे तो सत्तास्वरूप में कुलटा-स्त्री समान कहा है।

देखिये, जैनधर्म का चरणानुयोग भी कितना अलौकिक है! जैन श्रावक के आचरण किसप्रकार होवें, उसकी यह बात है। राग की मंदता के आचरण बिना जैन श्रावकपना नहीं बनता। राग के एक अंश का भी कर्तव्य जिसकी दृष्टि में रहा नहीं, उसके आचरण में भी राग कितना मंद पड़ जाता है। पहले जैसे ही राग-द्वेष किया करे तो समझना कि उसकी दृष्टि में कोई अपूर्वता नहीं आई, उसकी रुचि में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। रुचि और दृष्टि बदलते ही सारी परिणति में अपूर्वता आ जाती है, परिणाम की उथलपुथल हो जाती है। इसप्रकार द्रव्यानुयोग के अध्यात्म की और चरणानुयोग के परिणाम की संधि होती है। दृष्टि सुधरे और परिणाम चाहे जैसा हुआ करें, ऐसा नहीं बनता। देव-गुरु के प्रति भक्ति, दान वगैरह परिणाम की मंदता भी जिसे नहीं है, उसे तो दृष्टि सुधरने का प्रसंग ही नहीं। जिज्ञासु की भूमिका में भी संसार की तरफ के परिणामों की अत्यंत मंदता हो जाती है, और धर्म का उत्साह बढ़ जाता है।

दानादि के शुभपरिणाम मोक्ष के कारण हैं—ऐसा चरणानुयोग में उपचार से कहा जाता है, परंतु उसमें स्वसन्मुखता द्वारा जितने अंश राग का अभाव होता है, उतने अंश को मोक्ष का कारण जानकर दान को उपचार से मोक्ष का कारण कहा; इसप्रकार परम्परा से वह मोक्ष का कारण होगा, परंतु किसे? जो शुभराग में धर्म मानकर नहीं अटके उसे। परंतु शुभराग को ही जो मोक्ष का कारण मानकर अटक जावेगा, उसके लिये तो वह उपचार से भी मोक्षमार्ग नहीं है। वीतरागी शास्त्रों का कोई भी उपदेश राग घटाने हेतु ही होता है, राग के पोषण हेतु नहीं होता।

अहो, जिसे अपनी आत्मा का संसार से उद्धार करना है, उसे संसार से उद्धार करने का मार्ग बतानेवाले देव-गुरु-धर्म के प्रति परम उल्लास आता है। जो भव से पार हो गये, उनके प्रति उल्लास से राग घटाकर स्वयं भी भव से पार होने के मार्ग में आगे बढ़ता है। जो जीव संसार से पार होने का इच्छुक होवे, उसे कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र के प्रति प्रेम आता ही नहीं, क्योंकि उनके प्रति प्रेम तो संसार का ही कारण है।

द्रव्यस्वभाव तथा पर्यायस्वभाव ऐसे दोनों स्वभाववंत आत्मवस्तु है

❀ कई लोगों को ऐसा प्रश्न होता है कि—आत्मा का स्वभाव शुद्ध ज्ञायक है, उसके स्वभाव में अशुद्धता या राग-द्वेष नहीं है; तब फिर पर्याय में अशुद्धता आयी कहाँ से ?

— इस प्रश्न का यथार्थ समाधान समझना मुमुक्षु के लिये बहुत उपयोगी है, अत: श्रीगुरु ने जिनागम अनुसार उसका जो स्पष्टीकरण किया है, वह यहाँ दिया जाता है।

(१) कोई ऐसा कहते हैं कि, आत्मा के स्वभाव में से तो पर्याय शुद्ध ही आती है, परंतु बाद में परलक्ष करके वह पर्याय अशुद्ध हो जाती है। प्रगट होने के समय में तो शुद्ध होती है और बाद में परलक्ष के द्वारा वह अशुद्ध हो जाती है। (-जैसे कुए में से जो जल निकलता है, वह बाद में कड़ी चीज़ के संसर्ग में कडुआ हो जाता है उसी तरह) द्रव्य में से तो पर्याय शुद्ध ही आई और बाद में अशुद्ध हुई।

— यह समाधान सत्य नहीं है।

(२) द्रव्य में से अशुद्धता नहीं आती, अतएव पर निमित्त ने यह अशुद्धता कराई, ऐसा कोई कहे तो,

—यह समाधान भी सत्य नहीं है।

(३) द्रव्य की पर्याय में अशुद्धता होती ही नहीं, अशुद्धता तो जड़ में होती—ऐसा कोई कहे तो,

— यह समाधान भी सत्य नहीं है।

उसका यथार्थ समाधान इसप्रकार समझना चाहिए कि—

वस्तु अनेकांतस्वभावी है; सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, द्रव्य-पर्याय आदि अनेक धर्म उसमें हैं; उनमें से प्रकरणवश यहाँ द्रव्य-पर्यायरूप स्वभाव को मुख्य लेकर समाधान किया जाता है।—

❀ वस्तु में दो स्वभाव—एक द्रव्यस्वभाव; दूसरा पर्यायस्वभाव ❀

इन दोनों स्वभाव को जानने से पूरी वस्तु का यथार्थस्वरूप जाना जाता है। कोई अकेले पर्यायस्वभाव को ही पूरी वस्तु मान ले तो वह पर्याय मूढ़ है; एवं वस्तु के पर्यायस्वभाव को जो जानता ही नहीं—वह भी मूढ़ है।

आत्मा शुद्ध ज्ञायक है, उसके स्वभाव में राग-द्वेष नहीं है—ऐसा जब प्रतिपादित होता है, तब वह कथन द्रव्यस्वभाव की विवक्षा से है, उस समय पर्यायस्वभाव गौण है।—ऐसे द्रव्यस्वभाव को देखने पर आत्मा में अशुद्धता है ही नहीं और उसमें से अशुद्धता नहीं आती।

— तो फिर पर्याय में अशुद्धता क्यों ?

— पर्यायस्वभाव से देखने पर, पर्याय में जो अशुद्धता है, वह आत्मा की ही है, आत्मा ही उस अशुद्धपर्यायरूप परिणत हुआ है। श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—(प्रवचनसार, गाथा ८) जो द्रव्य जिस काल में जिस भावरूप परिणमित है, उस काल में वह उस भाव में तन्मय है; अतः धर्मरूप से परिणत जीवद्रव्य को स्वयमेव ही धर्म जानो।

'सम्यग्दर्शनमेतदेव नियमात् आत्मा च तावानयं।' (समयसार, कलश ६)

इसमें तो शुद्ध पर्याय की बात है; उसीप्रकार—जिस पर्याय में विकार हुआ है, वह पर्याय स्वयं ही ऐसे स्वभाववाली है; पर्याय का वह विकार—

(१) द्रव्यस्वभाव में से नहीं आया।

(२) पहले वह पर्याय शुद्ध थी और बाद में अशुद्ध हुई—ऐसा भी नहीं है।

(३) निमित्त ने यह अशुद्धता कराई—ऐसा भी नहीं है। एवं

(४) वह अशुद्धता जड़ में हुई—ऐसा भी नहीं है।—'तब फिर है कैसा ?'

वह अशुद्धता आत्मा की पर्याय में हुई है और उसका कारण भी उस समय का पर्यायस्वभाव ही है।

अशुद्धता को 'पर्यायस्वभाव' कहा, यह सुनकर चौंकना नहीं, क्योंकि पर्यायस्वभाव एक ही समय का होता है, अतः जिस पर्याय में विकार है, वह विकार उस पर्याय के समय की मर्यादा जितना ही है, वह विकार द्रव्यस्वभाव को विकारी नहीं कर देता।

जो ऐसे दो प्रकार के स्वभाव (द्रव्यस्वभाव तथा पर्यायस्वभाव) को समझे उसे, पर्याय में विकार होने पर भी शुद्धद्रव्य की प्रतीति रहा करती है, और शुद्धद्रव्य की प्रतीति के जोर से पर्यायस्वभाव भी निर्मल-निर्मल होता जाता है।—यह है अनेकांतमय वस्तु की पहिचान का सुफल!

अब, जो शुद्धपर्याय हुई, वह भी 'पर्यायस्वभाव' है; तत्काल में आत्मा ही अपने पर्यायस्वभाव से उस सम्यक्त्वादिरूप हुआ है। इसप्रकार पर्यायरूप होनेवाला जो आत्मा, उसके पूर्ण स्वभाव को (अर्थात् द्रव्य-पर्याय दोनों स्वरूप को) जाननेवाला जीव अपने शुद्ध द्रव्य-गुण का अनुसरण करता हुआ शुद्धपर्यायरूप ही परिणमित होता है। इसप्रकार शुद्धस्वभाव के स्वीकारपूर्वक स्वसन्मुखता से पर्याय का प्रवाह शुद्ध होने लगा,—यह शुद्ध द्रव्य-पर्यायरूप अनेकांत है, और यही जैनसिद्धांत का सार है।

पर्याय में जिसको अकेला अशुद्ध परिणमन है, उसने अपने शुद्ध द्रव्य-गुणस्वरूप को जाना ही नहीं, अतएव अनेकांत को ही नहीं जाना, वह एकांतवादी है; एकांतवादी माने मिथ्यात्वी, उसे शुद्धता कैसे हो सकती है ?

'द्रव्य-गुण तो शुद्ध है, तब फिर पर्याय में विकार कहाँ से आया ?'—ऐसे प्रश्नकार को समाधान के लिये हम प्रति प्रश्न करते हैं कि—हे भाई! 'द्रव्य-गुण तो शुद्ध है'—ऐसा तू किस आधार से कहता है ? यदि तूने वास्तव में द्रव्य-गुण की शुद्धता को जान ली हो, तब तो उस शुद्ध द्रव्य-गुण के आश्रय से तेरी पर्याय में भी आंशिक शुद्धता प्रगट होनी ही चाहिए, और जैसे आंशिक शुद्धता द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई, वैसे पूर्ण शुद्धता भी द्रव्य के ही आश्रय से प्रगट होगी—ऐसा भी निर्णय उसमें हो गया। और ऐसा होने पर अब 'विकार कहाँ से आया' यह बात मुख्य न रही, परंतु 'शुद्धता मेरे स्वभाव में से आयी'—ऐसे शुद्धता के कारण की ही मुख्यता रही।

[द्रव्य-गुण तो शुद्ध हैं परंतु हमारी पर्याय में शुद्धता बिल्कुल नहीं दिखती—ऐसा जो कहता है, उसने शुद्ध द्रव्य-गुण को वास्तव में नहीं जाना। द्रव्य-गुण की शुद्धता का निर्णय किया किसने ? द्रव्य-गुण की शुद्धता का निर्णय शुद्धपर्याय ही करती है, राग उसका निर्णय नहीं कर सकता। जिसके पास शुद्धपर्याय नहीं, उसे द्रव्य-गुण की शुद्धता का निर्णय भी नहीं।]

अब, जिस जीव ने अपने द्रव्यस्वभाव का और गुणस्वभाव का निश्चय किया, वह अपने पर्यायस्वभाव को भी अवश्य जानेगा। द्रव्यस्वभाव तथा गुणस्वभाव तो त्रिकाल शुद्ध ही हैं, और पर्यायस्वभाव त्रिकाल शुद्ध नहीं है किंतु शुद्ध एवं अशुद्ध है अर्थात् पर्याय में शुद्धता तथा अशुद्धता दोनों प्रकार होते हैं। ऐसा जाननेवाला जीव विकार को भी (वह द्रव्य-गुणस्वभाव में न होने पर भी) पर्याय का स्वभाव समझता है। कहीं पर द्रव्य-गुण के स्वभाव को 'शक्ति' कहते हैं, तथा पर्याय के स्वभाव को 'योग्यता' कहते हैं। द्रव्य-गुण का स्वभाव अर्थात् शक्ति तो त्रिकालरूप होती है, और पर्याय का स्वभाव अर्थात् योग्यता तो वर्तमानरूप एक समय की ही होती है। शक्ति में अशुद्धता नहीं होती; परंतु योग्यता में शुद्धता एवं अशुद्धता भी हो सकती है। शक्ति कारणरूप है, योग्यता कार्यरूप है। शुद्ध कारण के अवलंबन से शुद्ध कार्य होता है।

जिसने अपने द्रव्य-गुण के स्वभाव की शुद्धता का निश्चय किया, उसको उसके आश्रय से पर्याय भी आंशिक शुद्ध हुई; वह अपने द्रव्य-गुण की शुद्धता की दृष्टि से यदि ऐसा कहता हो कि 'विकार आत्मा का कार्य है ही नहीं,' तो स्वभावदृष्टि की अपेक्षा से उसकी बात सत्य है। ध्यान रहे कि, ऐसे जीव को तो अपनी शुद्धस्वभावशक्ति के आश्रय से शुद्धपर्याय विद्यमान रहती है, और विकार अत्यंत ही अल्प होता है—उसमें भी मिथ्यात्वादि तो होते ही नहीं।

जिसको अपने में स्वभावशक्ति का ज्ञान होकर अज्ञान का नाश हुआ है, वही अन्य जीवों के संबंध में ऐसा यथार्थ जानता है कि 'ये निगोदादि सभी जीवों के द्रव्य-गुण तो शुद्ध ही हैं, फिर भी उनकी पर्याय में जो विकार है, वह उनकी उस पर्याय का ऐसा स्वभाव है। जो विकार है, वह उनका पर्यायधर्म है; द्रव्य-गुण विकारी नहीं है, अतः आज का विकारी भी कल स्वभावशक्ति का आश्रय करके शुद्ध हो सकता है।' इसप्रकार साधक धर्मात्मा को जैसे अपने में पर्यायबुद्धि नहीं है, वैसे अन्य जीवों को भी वह पर्यायबुद्धि से नहीं देखते—उन्हें उनकी विकारी पर्याय जितना ही नहीं मान लेते; किंतु द्रव्यस्वभाव को देखनेवाली उनकी दृष्टि तो सभी जीवों को सिद्धसदृश देखती है, अतः ऐसी पवित्र दृष्टि में (शुद्धनय में) उन्हें किसी के ऊपर राग-द्वेष नहीं है। अहो वीतरागीदृष्टि! उस दृष्टि को सिद्ध के ऊपर न राग है, निगोद के ऊपर न द्वेष; सिद्ध और निगोद-ऐसे दो भेद को भी वह नहीं देखती, वह तो शुद्धस्वभावशक्ति से सभी

जीवों को समान ही देखती है; वास्तव में तो वह शुद्धदृष्टि अपने द्रव्यस्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी को देखती ही नहीं।

जिसे ऐसी परम महिमावन्त पावनदृष्टि प्रगट हुई हो, वह भेदज्ञानी-संत 'कर्म मेरी पर्याय को बिगाड़ देता है'—ऐसी शौर्यहीन तुच्छ बातों का स्वीकार कैसे करें? अखंड स्वभावशक्ति को सम्हालकर उसका जो स्वामी हुआ, वह जीव अपने पर्यायस्वभाव का स्वामी अन्य को क्यों मानेगा? अपनी पर्याय का स्वामीत्व अपने में ही स्वीकार करके, अखंड स्वभावशक्ति की सम्मुखता से, वह पर्याय की अशुद्धता को दूर करके पूर्ण शुद्धतारूप हो जायेगा; और अन्य जीवों की पर्याय में जो अशुद्धता-विकार दिखेगा, उसे वह परज्ञेयरूप से ऐसा जानेगा कि जिसकी वह पर्याय का ऐसा स्वभाव है; पुद्गल कर्म ने उसे विकाररूप परिणमन कराया—ऐसा नहीं है।

इसप्रकार अनेक स्वभाववाली वस्तु के समझने से सर्व प्रकार का समाधान हो जाता है और अपने में स्वाभाविक शुद्धता होती जाती है, अशुद्धता मिटती जाती है; इसी का नाम है जैनशासन! और यही है अनेकांतशासन का महान इष्टफल।

जय हो अनेकांत-प्रकाशक अर्हत्शासन की।

श्रावक के इक्कीस गुणों का वर्णन

अध्यात्म-कवि पंडित बनारसीदासजी ने नाटक समयसार के अंत में १४ गुणस्थान का वर्णन किया है; उसमें अणुव्रतस्वरूप पाँचवें गुणस्थान के वर्णन में श्रावक के २१ गुण बताये हैं। वे सर्व जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी होने से यहाँ देने में आये हैं। सर्व मुमुक्षुओं को इन गुणों का स्वरूप विचारकर अपने में धारण करना चाहिये, जिससे जीवन शोभायमान होगा:—

[सवैया]

लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत, परदोषकौ ढकैया पर उपगारी है।
सौमदृष्टि गुनग्राही गरिष्ट सबको इष्ट, शिष्टपक्षी मिष्टवादी दीरध विचारी है॥
विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तत्ज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य विवहारी है।
सहज विनीत पापक्रियासौं अतीत ऐसौ, श्रावक पुनीत इकवीस गुनधारी है॥

१. **लज्जावंत**—कोई भी जरा सा भी पापकार्य, अन्याय, अनीति वगैरह में उसको लज्जा आती है कि अरे! मैं तो जैन, मैं जिनवरदेव का परम भक्त, मैं आत्मा का जिज्ञासु हूँ। अत: मुझको ऐसे पापकार्य शोभा नहीं देते; मेरा जीवन तो रत्नत्रयरूप उत्तम भाववाला होना चाहिये।

२. **दयावंत**—अरे, घोर दु:खमय यह संसार, उसमें जीवन कितना दु:खी है! मेरे निमित्त से कोई जीव को दु:ख न हो, किसी को दु:ख देने का भाव मेरे को न हो। मेरा आत्मा दु:ख से छूटे और जगत के जीव भी दु:ख से मुक्त हो; ऐसी दयाभावना होती है।

३. **प्रशांत**—कषाय बिना के शांतपरिणाम होते हैं; मान-अपमानादि के छोटे-छोटे प्रसंगों में बार-बार क्रोध हो जाये, या अनुकूलता के प्रसंग में हर्ष से फूला नहीं समाये—ऐसा उसको नहीं होता। दोनों प्रसंग में विशेष क्रोध एवं हर्ष से रहित शांत-गंभीर परिणामवाला होता है।

४. **प्रतीतवंत**—देव-गुरु-धर्म के ऊपर तथा साधर्मी के ऊपर उसको श्रद्धा होती है; बात-बात में साधर्मी के ऊपर संदेह-शंका करना-वह श्रावक को शोभा नहीं देता; स्वयं का अपमानादि हो, प्रतिकूल प्रसंग आवे तथा दूसरे का मानादि बढ़ जाये तो भी धर्म में संदेह नहीं करता, दृढ़ प्रतीति रखता है।

५. **दूसरों के दोष ढँकनेवाला**—अरे, दोष में तो जगत के जीव डूबे हुए ही हैं, वहाँ पर के दोष क्या देखना ? मेरे को तो मेरा दोष मिटाने का है। कोई साधर्मी से या अन्य जीव से दोष हो जाये तो, उसकी रक्षा करके उसका दोष कैसे दूर होवे, ऐसा उपाय करना उचित है, परंतु दोष देखकर निंदा करना उचित नहीं है।

६. **पर उपकारी**—धर्मबुद्धि द्वारा तथा तन-मन-धनादि द्वारा भी परजीवों का उपकार करते हैं। जगत के जीवों का हित हो, साधर्मियों को देव-गुरु-धर्म के सेवन में सर्वप्रकार से अनुकूलता हो और वे निराकुलता से धर्म का आराधन करें, ऐसी उपकार-भावना श्रावक को होती है।

७. **सौम्यदृष्टिवंत**—उनकी दृष्टि में सौम्यता होती है, जैसे माता बालक को मीठी नजर से देखती है, उसीप्रकार धर्मात्मा सभी जीवों को मीठी नजर से देखते हैं। उनको देखकर दूसरे जीव भयभीत हो जाये, ऐसा कठोर स्वभाव नहीं होता; उनका परिणाम ऐसा सौम्य होता है कि जिनके संग में दूसरे जीवों को भी शांति मिलती है।

८. **गुणग्राही**—वे गुणों के ग्राहक होते हैं; सम्यक्त्वादि गुणों को देखकर उसकी प्रशंसा करते हैं; किसी में अल्प क्रोधादि दोष देखकर उसके सम्यक्त्वादि गुणों के प्रति अनादर नहीं करते, परंतु गुणों को देखकर उसका आदर करते हैं। कोई अपना अपमानादि करे तो भी उसके गुणों का अनादर नहीं करते, परंतु ऐसा विचार करते हैं कि मेरा अपमान किया तो किया, फिर भी उसे जैनधर्म के प्रति तो प्रेम-आदर है, वह जैनधर्म का भक्त हैं, देव-गुरु का आदर करनेवाला है, अत: मेरा साधर्मी है, ऐसे उसके गुणों का ग्रहण करते हैं। इसप्रकार गुण का ग्रहण करने से साधर्मी के प्रति द्वेषभाव नहीं आता, परंतु प्रेम और वात्सल्यभाव बना रहता है।

९. **गरिष्ट (सहनशील)**—संसार में शुभाशुभकर्मों के योग से अनुकूलता-प्रतिकूलता तो आती ही है, कोई प्रतिकूलता आ जाये या अपमानादि हो, रोग हो, तब धैर्यपूर्वक सहन करते हैं और धर्म में दृढ़ता रखते हैं; प्रतिकूलता आने पर घबड़ाते नहीं, खेदखिन्न हो आर्तध्यान नहीं करते, परंतु सहनशीलता से वैराग्य को बढ़ाते हैं।

१०. **सर्वप्रियता**—सभी जीवों के प्रति मधुर व्यवहार रखते हैं, कठोर व्यवहार नहीं रखते; साधर्मी प्रेम के कारण, सज्जनता के कारण तथा न्यायनीति और धार्मिकवृत्ति के कारण

सज्जनों को तो वह प्रिय लगता ही है, तथा कोई विरोधी हो तो उसके प्रति भी प्रेमपूर्ण व्यवहार से उसके दिल को भी जीत लेते हैं। कहीं पर भी क्लेश बढ़े ऐसा कटुतापूर्ण व्यवहार नहीं करते।

११. **शिष्टपक्षी**—सत्य और सदाचार का पक्ष करनेवाला होता है। लौकिक प्रयोजन के लिये, मान से या भय से सत्यधर्म को तथा न्याय-नीति को छोड़ता नहीं। जहाँ धर्म हो, जहाँ सत्य हो और जहाँ न्याय हो, उसका पक्ष करता है।

१२. **मिष्टवचनी**—जिनसे स्व-पर का हित होता हो, ऐसे मधुर वचन बोलते हैं। जिनके द्वारा स्वयं को कषाय हो अथवा दूसरे का हित दुखाय—ऐसे कठोर वचन नहीं बोलते; शांति से-मधुरता से-कोमलता से सत्य और हित की बात करते हैं। सत्य बात भी कठोरता से नहीं कहते।

'दो दिन के मेहमान, बोली बिगाड़े कौनसौ ?'

१३. **दीर्घविचारी**—देश काल का विचार करके, अपने परिणाम का तथा शक्ति का विचार करके और स्व-पर के हित का विचार करके योग्य प्रवृत्ति करते हैं। अन्य की देखादेखी बिना विचारे निष्प्रयोजन प्रवृत्ति में नहीं पड़ते। जिससे वर्तमान में तथा भविष्य में अपने को शांति रहे और धर्म की शोभा बढ़े-ऐसी प्रवृत्ति विचारपूर्वक करते हैं।

१४. **विशेषज्ञ**—संघ की स्थिति, देश-काल की स्थिति वगैरह के जानकार होते हैं। धर्म में या गृहव्यवहार में कब कैसी परिस्थिति होगी, कब कैसी जरूरत पड़ेगी, उनके जानकारी होते हैं, और उनके योग्य उपाय करते हैं।

१५. **रसज्ञ**—रस माने तात्पर्य, शास्त्राभ्यास आदि में उसके शांतरसरूप सच्चे रहस्य के जाननेवाले होते हैं। उन्होंने धर्म का मर्म जानकर शांतरस का स्वाद तो लिया ही है; अत: वे परमार्थ के रसज्ञ हैं; और व्यवहार में भी करुणारस, रौद्ररस आदि को यथायोग्य जानते हैं।

१६. **कृतज्ञ**—अहो, देव-गुरु-धर्म के परम उपकारी तो क्या बात! उनका बदला तो किसी प्रकार चुकाया नहीं जा सकता; उनके लिये मैं जो कुछ करूँ, वह कम है। इसप्रकार महान उपकारबुद्धि से देव-गुरु-धर्म के प्रति प्रवर्ते। उसीप्रकार साधर्मीजनों के

उपकार अथवा अन्य सज्जनों के उपकार को भी वे भूलते नहीं। उपकार को याद करके उनके योग्य सेवा-सत्कार करते हैं। अन्य के प्रति अपने किये उपकार को याद नहीं करते, एवं न उसके बदले की भी आशा रखते हैं।

१७. **तत्त्वज्ञ**—तत्त्व के जानकार होते हैं। जैनधर्म का मुख्य तत्त्व क्या है ? उसको बराबर समझकर उसके प्रचार की भावना करते हैं। बुद्धिअनुसार करणानुयोगादि सूक्ष्मतत्त्वों का भी अभ्यास करते हैं। धर्मी श्रावक आत्मतत्त्व को तो जानते ही हैं, तदुपरांत जैनशास्त्रों के अगाध, गंभीर श्रुतज्ञान में कहे हुए तत्त्वों को भी विशेषरूप से जानते हैं तथा विपरीत जीवों में तत्त्व की विपरीतता किसप्रकार से है ? वह भी जानकर उसे दूर करने का प्रयत्न करते हैं।

१८. **धर्मज्ञ**—धर्म के जानकार होते हैं। कहीं निश्चयधर्म की प्रधानता रहती है, कहीं व्यवहारधर्म की प्रधानता से वर्तना होता है। इस तरह धर्म के सब मर्म को जानकर शासन की शोभा बढ़े और अपना हित हो, ऐसा वर्तन करते हैं। श्रावक का धर्म क्या ? मुनि का धर्म क्या ? धर्म में, तीर्थों में, शास्त्रादि में तथा साधर्मी में दानादि की कब और कैसी जरूरत हैं, उस संबंधी श्रावक को जानकारी होती है।

१९. **दीनतारहित तथा अभिमानरहित ऐसा मध्यस्थ व्यवहारी**—धर्म का गौरव अच्छी तरह बना रहे तथा अपने को अभिमानादि न हो, इसप्रकार मध्यस्थ व्यवहार से प्रवर्ते। व्यवहार में जहाँ-तहाँ दीन न हो जाये; रोगादि प्रसंग में या दरिद्रतादि में घबड़कर ऐसी दीनता नहीं करते कि जिससे धर्म की निंदा हो। अरे, मैं तो पंच-परमेष्ठी का भक्त, मेरे को दुनिया में दीनता कैसी ? उसीप्रकार देव-गुरु-धर्म के प्रसंग में साधर्मी के प्रसंग में अभिमान रहित नम्रता से प्रेम से वर्ते। साधर्मी की सेवा में तथा अपने से छोटे साधर्मी के साथ हिलमिलकर रहने में अपना हीनता नहीं मानते। संतों के चरणों में चाहे जैसा दीन होकर भी यदि आत्महित होता हो तो वह उसके लिये तैयार है; उसमें अभिमान नहीं रखता। और जिसमें आत्मा का हित न होता हो, ऐसे प्रसंग में वह दीन नहीं होता; असत् के प्रति जरा भी नहीं झुकता, वहाँ अपने धर्म का स्वाभिमान रखता है। इसप्रकार न दीन, न अभिमानी—ऐसे मध्यस्थ व्यवहारी श्रावक होते हैं।

२०. **सहज विनयवान—** जहाँ विनय का प्रसंग हो, वहाँ उसको सहज विनय आता है। देव-गुरु के प्रसंग में, साधर्मी के प्रसंग में, या बड़ों के प्रसंग में योग्य विनय से वर्तन करते हैं। सम्यक्त्वादि गुणीजनों को देखते ही प्रसन्नता से विनय-बहुमान प्रशंसा करते हैं, किसी के प्रति ईर्षाभाव नहीं रखते। शास्त्र के प्रति, धर्मस्थानों के प्रति, एवं लोक-व्यवहार में भी विनय-विवेकपूर्वक योग्य रीति से वर्तते हैं, किसी के प्रति अपमान या तिरस्कारपूर्ण वर्तन नहीं करते।

२१. **पापक्रिया से रहित—** कुदेव-कुगुरु के सेवनरूप मिथ्यात्वादि पापों का तथा मांसादि अभक्ष्य के भक्षणरूप तीव्र हिंसादि पापों का तो सर्वथा त्याग कर दिया है, तदुपरांत आरंभ परिग्रह संबंधी जो पापक्रियाएँ हैं, उन्हें भी छोड़कर निर्दोष शुद्ध जीवन का अभिलाषी है। अरे, ऐसा उत्तम जैनधर्म तथा ऐसा अद्भुत आत्मस्वरूप, उसे पाकर अब कोई पाप मेरे को शोभा नहीं देता; इसप्रकार अव्रतजन्य पापों से अत्यंत भयभीत रहते हैं। मेरे जीवन में कोई छोटा-सा भी पाप न हो, और वीतरागता से उज्ज्वल मेरा जीवन हो, ऐसी भावना रहती है।

—इसप्रकार श्रावक ये पुनीत २१ गुणों के धारक होते हैं। मुमुक्षु को भी इनमें से प्रत्येक गुण के स्वरूप का विचार करके अपने में भी उन गुणों को धारण करना चाहिये; इससे जीवन पवित्रता से शोभायमान होगा।

हमारा अफ्रीका का पत्र—

अफ्रीका से नैरोबी जैन मुमुक्षु मंडल के चेयरमैन श्री जेठालाल देवराज शाह (पी.बी. ४३१२९ नैरोबी) लिखते हैं कि मैं आत्मधर्म पढ़कर प्रमोदित होता हूँ; २५ वर्ष से आत्मधर्म पढ़ता हूँ और उसका नया अंक कब मिले, उसकी प्रतीक्षा करता रहता हूँ। हम जैसे मुमुक्षुओं को ऐसा अपूर्व आत्मधर्म किसी महत पुण्ययोग से मिला है—अन्यथा भारत में एवं भारत के बाहर विदेशों में बसनेवाले मुमुक्षुओं को सच्चा जैनमार्ग कौन दिखाते? यह तो वर्तमान में कहानगुरु का योग मिल जाने से हमें तत्त्वज्ञान की बात प्राप्त हुई। आत्मधर्म के संचालन के द्वारा आप प्रशंसनीय जैनधर्म की बहुत प्रभावना तथा उल्लासपूर्वक सेवा कर रहे हो; श्रीगुरु के सान्निध्य में रहकर जो अपूर्व लाभ लिया, इससे आप भाग्यशाली हो, और आत्महित साध रहे हो। आत्मधर्म के द्वारा जैनसमाज को तत्त्वज्ञान परोसा रहे हो—अतः धन्यवाद देता हूँ। हम अफ्रीका से श्रीगुरु का दर्शन करने के लिये तथा उनके मुख से भगवान महावीर की वाणी सुनने छह बार भारत आ चुके हैं; श्रीगुरु के प्रताप से अपूर्व लाभ हमें मिला है; अन्यथा इतने दूर देश में रहते हुए जिनवाणी का ऐसा लाभ मिलना दुर्लभ था।

अफ्रीका-नैरोबी में भगवान महावीर-निर्वाणमहोत्सव आनंद-उल्लासपूर्वक सभी जैनों ने मिलकर मनाया।

तीर्थंकरों के संदेश के प्रदाता, जैनधर्मचक्र प्रवर्तक

हे कुन्दकुन्दस्वामी! आकर के दर्शन दे दो!

पौष कृष्णा अष्टमी कुन्दकुन्दस्वामी की आचार्यपदवी का दिन है। अहा, जब भारत के चतुर्विध संघ ने मिलकर कुन्दकुन्द मुनिराज को आचार्यपद में स्थापित करके जैनशासन के नायकरूप से शिरोधार्य किया, उस समय का उत्सव कैसा होगा! अपनी अद्भुत आत्मप्रतिभा के द्वारा मोक्षमार्ग का महा-रथ चलानेवाले वे संत कैसे होंगे! और विदेहक्षेत्र में ऐसे—देह से छोटे परंतु अध्यात्म में मोटे—मुनिराज को देखकर वहाँ के जीवों को कितनी प्रसन्नता हुई होगी! और फिर जब वे आनंद के अनुभवरस से भरपूर समयसार की रचना करते होंगे, तब श्रुतदेवीमाता अपने इस नंदन को देखकर कितनी प्रसन्न हुई होगी! अपने आत्मवैभव से हमें शुद्धात्मा दर्शानेवाले वे भरतक्षेत्र के छोटे से तीर्थंकर कैसे अद्भुत होंगे? अहा, आज फिर से हमें उनके दर्शन हो जाये तो कैसा आनंद हो! वाह रे वाह! उनके प्रताप से तो आज धर्मचक्र चल रहा है, और हमें धर्म मिल रहा है।

आओ प्रभुजी! आओ! रूप तुम्हारा दिखाओ।

पढ़िये और खोजिये

हमें प्रसन्नता है कि इस विभाग में हमारे विद्यार्थी भाई-बहनों के उपरांत छोटे-बड़े २५० से अधिक जिज्ञासु बड़े उत्साह से भाग ले रहे हैं, और स्वाध्याय-प्रेरक यह आयोजन का सभी ने स्वागत किया है। इस वक्त हम कोई भेंट नहीं भेज सके हैं; अब इस अंक में से दस वाक्य खोजकर (तारीख २६ जनवरी के पहले) भेज देनेवाले सभी को English Jain Primer भेंट दी जायेगी। आईये, पढ़िये और निम्न दस वाक्य खोजकर पूरे कीजिये—

१. राग से भिन्न ऐसी ज्ञान-अनुभूति से ही .....।

२. यह शुद्ध द्रव्य-पर्यायरूप अनेकांत है, और यही .....।

३. द्रव्यस्वभाव तथा पर्यायस्वभाव ऐसे दोनों स्वभावंत .....।

४. अहो! मेरा तो ज्ञान है, ज्ञान ही मैं हूँ। ज्ञान के सिवा .....।

५. अहो, जिसे अपनी आत्मा का संसार से उद्धार करना है उसे .....।

६. ऐसे मनुष्यपने को पाकर यदि शक्ति हो तो मुनि होकर .....।

७. कोई भक्त ने अपने पुत्र का मस्तक काटकर दान में दिया, परंतु .....।

८. अहा, चैतन्य का आनंदनिधान जिसने देखा उसे राग के फलरूप.....।

९. अरे! यदि अपने आत्मा को न पहचाना तो .....।

१०. बालकों! सच कहना-हाथी की कथा तुम्हें कैसी पसंद आयी—

भेजने का पता : संपादक, आत्मधर्म : सोनगढ़-३६४२५०

—००—

श्री कहान-राहतकेन्द्र सोनगढ़ की ओर से सूचना—गुजरात-सौराष्ट्र में इस वर्ष अकाल जैसी परिस्थिति होने के कारण, सोनगढ़ में श्री कहान-राहतकेन्द्र-ट्रस्ट की ओर से प्रतिदिन करीब ५०० गायों को घास चारा दिया जाता है; इसके लिये फण्ड भी हुआ है- जो अभी चालू है। इस कार्य में आप भी सहयोग दे सकते हैं। फण्ड की रकम 'श्री कहान-राहतकेन्द्र ट्रस्ट' सोनगढ़ इस नाम से भेजने की सूचना है।

जयपुर : वीतरागविज्ञान-विद्यापीठ की सन् १९७५ की शीतकालीन परीक्षायें दिनांक १-३-४ फरवरी को होगी।

सोनगढ़ से प्रकाशित हिन्दी-साहित्य (जो अभी उपलब्ध है)

❀ **अहिंसा परमो धर्मः**—भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित वीतरागी अहिंसा धर्म का सत्य स्वरूप समझने के लिये अत्यंत सुंदर सचित्र पुस्तक; जैनसमाज में धर्मप्रचार के लिये सर्वत्र उपयोगी। मूल्य मात्र ०=५०, हिन्दी-गुजराती-मराठी तीनों भाषा में छपी है। (लेखक - ब्रह्मचारी हरिलाल जैन)

❀ Jain Primer (जैन बालपोथी की इंग्लिश आवृत्ति) फिर छपकर तैयार है, देश-विदेश में जैनधर्मप्रचार के लिये उपयोगी है। सब मिलकर ५ भाषा में १,३३००० प्रति छप चुकी है-जो कि जैनसाहित्य का गौरव है। (मूल्य ०=५०)

❀ **मोक्षमार्गप्रकाशक**—तत्त्वजिज्ञासुओं के लिये सर्वोपयोगी ग्रंथ; फिर छपकर तैयार है (आधुनिक हिन्दी में) मूल्य ५=००

❀ **समयसार** (कर्ताकर्म अधिकार प्रवचन) मूल्य ७=००

❀ **धर्म की क्रिया :** (लेखक : रामजीभाई माणेकचंद दोशी) फिर छपकर तैयार (२=००)

— **भगवान महावीर** — प्रभावना करने योग्य पुस्तिका १०० प्रति के १५=००

समयसार प्रवचन, भाग १	(४=५०)
समयसार प्रवचन, भाग २	(४=५०)
समयसार प्रवचन, भाग ४	(७=००)
पुरुषार्थसिद्धि उपाय	(३=५०)
द्रव्यसंग्रह	(१=२०)
ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव	(३=००)
अनुभव प्रकाश	(०=६५)
अष्टप्रवचन	(१=५०)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला - १	(१=००)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला - २	(१=१०)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला - ३	(०=७५)
भेदविज्ञानसार	(२=००)
सिद्धांत प्रवेशिका	(०=४०)
नियमसार-शास्त्र	(५=५०)
कार्तिकेयानुप्रेक्षा	(४=५०)
जैनबालपोथी : १	(०=२५)
जैनबालपोथी : २	(०=४०)
श्रावकधर्म प्रकाश :	(शीघ्र तैयार)
आत्मधर्म चैत्र मास तक के	(२=००)

प्रत्येक पुस्तक में डाक खर्च अलग समझना। पुस्तक मंगाने का पता : पुस्तक विभाग, श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़-३६४२५०। ऑर्डर के साथ में आपका पता अत्यंत स्पष्ट लिखिये।

विविध समाचार एवं पाठकों से बातचीत—

प्रतापगढ़ (राजस्थान) में—गत मास में १५ दिन का शिक्षण-शिविर चला, जिसमें बहुत उत्साह से दिन भर के कार्यक्रम में बहुत लोगों ने वीतरागी तत्त्वज्ञान का लाभ लिया। शिविर का आयोजन बहुत प्रभावक रहा। बच्चों ने भी आनंद से भाग लेकर सुंदर संस्कार प्राप्त किया। प्रतापगढ़ में अच्छी धर्मप्रभावना हुई।

सोनगढ़—पूज्य श्री कानजीस्वामी माघ सुद १ को सोनगढ़ से मंगलप्रस्थान करके जेतपुर होते हुए माघ सुद २ जूनागढ़ (गिरनार) पधारेंगे। सुद २ से ५ तक गिरनार-तलहटी के मानस्तंभ में जिनबिम्ब-प्रतिष्ठा का उत्सव है। सुद ४ के दिन पाँच टूंक तथा सहस्राम्रवन कल्याणकधाम की यात्रा होनेवाली है। जूनागढ़ के बाद सूरत, बम्बई होकर माह सुद दसमी को भोपाल पधारेंगे—वहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठामहोत्सव (माह सुद १० से फाल्गुन वद ३ तक) है। इसके बाद अनेक स्थलों में होकर चैत्र वद १३ से चैत्र सुद १३ तक बेंगलोर शहर पधारेंगे, जहाँ पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव है (मुहूर्त चैत्र सुद १३ का है।) बेंगलोर के बाद श्रवणबेलगोला में बाहुबली प्रभु की यात्रा करके बम्बई होते हुए अहमदाबाद पधारेंगे—जहाँ वैशाख सुद द्वितीय का उत्सव होगा। विशेष कार्यक्रम इसी अंक में दिया है।

—००—

सुलझी हुई पहेली — 'वीतराग-विज्ञान'

आप सबने करीब २५० संख्या में भाग लेकर हमारी पहेली सुलझा दी, और सभी ने सही उत्तर भेजा—इसके लिये धन्यवाद।

'वीतराग-विज्ञान'—कितनी अच्छी सुंदर वस्तु है! वाह, वीतराग-विज्ञान हम सबको बहुत प्रिय है; पंचपरमेष्ठी भगवंतों के पास भी वीतराग-विज्ञान है; वीतराग-विज्ञान किया कि हमें मोक्ष की टिकट मिल गयी, क्योंकि वीतराग-विज्ञान ही मोक्ष का कारण है।

उसमें तीसरा-चौथा अक्षर है, 'राग' जो हमें बिल्कुल प्रिय नहीं लगता। परंतु यदि प्रथम के दो अक्षर साथ में मिलायें तो 'वीतराग' हो जाता है—जो कि हमें बहुत प्रिय है। प्रथम और पंचम अक्षर 'V' है। ब्रिटेन के बड़ा प्रधान चर्चिल ने युद्ध में विजय की सूचक 'V' संज्ञा

पसंद की थी, वह वीतराग-विज्ञान का भी प्रथमाक्षर है—किंतु चर्चिल साहब के पास में वह नहीं था। सात अक्षर के वाच्यरूप वीतराग-विज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा सभी जिज्ञासु को है। अरहंतदेव के मार्ग में ही हमें उसकी प्राप्ति होती है; आप अपने जीवन में वीतराग-विज्ञान अवश्य प्राप्त करना। छहढाला के मंगलाचरण में वीतराग-विज्ञान को याद करके कहा है कि—

तीन जगत में सार वीतराग-विज्ञानता; शिवस्वरूप शिवकार नमूं त्रियोग सम्हारके।

[क्या आप भी अच्छी-अच्छी धार्मिक पहेलियाँ हमें लिख भेजोगे?—यदि आप भेजेंगे तो हम उनमें से भी पंसद करेंगे।]

गतांक में महावीर भगवान का नाम ७४ बार आया था; उनमें से तीन तो सबसे प्रथम मुखपृष्ठ के चित्र में ही है; एक अंदर में पहले पृष्ठ में भगवान के चित्र के साथ है; यदि आपने कम गिनती की हो तो फिर से एकबार प्रयत्न कीजिये।

वीर निर्वाण महोत्सव में वीर-बालकों का उत्साह

हमारे भगवान के इस महान अभूतपूर्व उत्सव में बड़ों के साथ हमारे छोटे बच्चों एवं युवान भी भाग ले, इस हेतु से आत्मधर्म-बालविभाग ने एक छोटी योजना बनायी कि बच्चों एवं बड़ों जो चाहे वे सब २५०० पैसे (पच्चीस रुपये) बचाकर बालविभाग में निर्वाणोत्सव के निमित्त से भेजें और इसमें इकट्ठी हुई छोटीसी निधि का बड़ा उपयोग धार्मिक उत्साह देनेवाली चीज़ों के नव-निर्माण में किया जायेगा। आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि अभी दो मास में ५०० करीब जिज्ञासुओं ने २५ रुपये भेज दिये हैं; योजना चालू है। रकम भेजने का पता : आत्मधर्म बालविभाग; ब्रह्मचारी हरिलाल जैन, सोनगढ़ (३६४२५०)। भेजनेवालों के नाम धन्यवाद के साथ यहाँ दिया जाता है—

१८३ वसंतराय बृजलाल, बम्बई
१८४ हरीशकांत मोहनलाल मोदी, दादर
१८५ शांताबेन रतिलाल दोशी, बम्बई
१८६ पारुल कांतिलाल जैन, बम्बई
१८७ दीना महासुखलाल जैन, चोटीला
१८८ केतनाबेन रजनीकांत जैन, मोरबी
१८९ निखीतकुमार इंदुलाल जैन, मोरबी
१९० जतीनकुमार अरविंद जैन, मोरबी
१९१ अमीत बी. जैन, शायन
१९२ एक मुमुक्षुभाई, शायन
१९३ स्मिताबेन नौमतलाल जैन, राजकोट
१९४ हसमुखलाल छोटालाल शाह, बम्बई
१९५ राजेश हसमुखलाल शाह, बम्बई
१९६ रमणलाल मणीलाल जैन, उमराला
१९७ इंद्रवदन रमणलाल जैन, गोधरा
१९८ अरविंदकुमार संपतराम जैन, गुलाबगंज
१९९ मुकुंदराय गोविंदजी जैन, गुलाबगंज
२०० संदीप रसिकलाल शाह, बम्बई
२०१ कुमारी मीनाक्षी प्रवीणभाई, गुलाबनगर
२०२ मीनाकुमारी नगीनदास जैन, कोईम्बतुर
२०३ जीतेन्द्र नगीनदास जैन, कोईम्बतुर
२०४ मीनल नगीनदास जैन, कोईम्बतुर
२०५ हेमंत नगीनदास जैन, कोईम्बतुर
२०६ समताबेन रतिलाल जैन, सोनगढ़
२०७ कांताबेन एम. अजमेरा, नागपुर
२०८ ब्र. नीलाबेन टी. शाह, सोनगढ़
२०९ प्रकाशचंद्र गोधा, मंदसौर
२१० परेशकुमार नंदलाल टोलीया, कोईम्बतुर
२११ भरत कांतिलाल वारीया, जामनगर
२१२ मुनीश हरकीशन जैन, जामनगर
२१३ दर्शनाबेन हरकीशन जैन, जामनगर
२१४ कल्पनाबेन प्रफुल्लचंद्र जैन, जामनगर
२१५ जयश्रीबेन प्रफुल्लचंद्र जैन, जामनगर
२१६ साधनाबेन प्रफुल्लचंद्र जैन, जामनगर
२१७ प्रीतिबेन प्रफुल्लचंद्र जैन, जामनगर
२१८ शशांक प्रफुल्लचंद्र जैन, जामनगर
२१९ प्रदीप शिवलाल जैन, जेतपुर
२२० हरीशकुमार कांतिलाल भायाणी, सोनगढ़
२२१ मयंककुमार हसमुखलाल भायाणी, भावनगर
२२२ सुनील रजनीकांत ढांक, पोरबंदर
२२३ दीप्तिबेन वीरचंद जैन, मुडेटी
२२४ समीन तथा सुनीलकुमार जैन, मुडेटी
२२५ मणिलाल पोपटलाल, बेंगलोर
२२६ बृजलाल पोपटलाल, बेंगलोर
२२७ भारती मनहरलाल, बेंगलोर
२२८ आनंदकुमार जसुभाई, अहमदाबाद
२२९ कीर्तिकुमार लक्ष्मीचंद शाह, लातुर
२३० सीमाबेन नानालाल, बम्बई
२३१ सुनील प्राणलाल जैन, राजकोट
२३२ ताराबेन पानाचंद, बम्बई
२३३ वीणाबेन रतिलाल शाह, मुलुन्द

२३४ चंपकलाल सुखलाल, सूरत
२३५ ब्र. चंदुलाल खीमचंद जैन, सोनगढ़
२३६ चेतनकुमार तथा मनोजकुमार एन., बम्बई
२३७ विकासचंद मणिलाल शाह, पोरबंदर
२३८ प्रदीप जैन, दिल्ली
२३९ वंदनाबेन शेठी, पूना
२४० हरीश अमृतलाल जैन, घाटकोपर
२४१ दीपककुमार मनुभाई कामदार, ''
२४२ हिमांशु मनुभाई कामदार, ''
२४३ फाल्गुनीबेन मनुभाई कामदार, घाटकोपर
२४४ दिव्येश चंद्रकांत महेता, कामदार, ''
२४५ प्रभाबेन जी. शाह, गोरेगांव
२४६ अजितकुमार हिम्मतलाल, बम्बई
२४७ ललितकुमार अमुलख शेठ, जोरावरनगर
२४८ तेजल कनकराय, जामनगर
२४९ बीना वसंतराय कामदार, सिकंदराबाद
२५० शीला प्रभुदास, हैदराबाद
२५१ अरविंद जेठालाल, सिकंदराबाद
(शेष अगले अंक में)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल प्रवास का क्रम (वि. सं. २०३१)

गाँव	तिथि	वार	तारीख	दिन / विशेष
जेतपुर	माघ शु.पहली दूसरी प्रतिपदा	मंगल-बुध	११-१२ फरवरी	२
गिरनार-तलहटी	माघ शु. २-५	गु.शु. श. र.	१३ से १६/२	(शनिवार प्रातः ४ बजे गिरनार-यात्रा प्रारंभ। रविवार मा.शु. ५ तलहटी में मानस्तंभ-वेदीप्रतिष्ठा)
सोनगढ़	माघ शु. ६	सोम.	१७/२	१
सूरत	माघ शु. ७-८	मंगल-बुध	१८-१९/२	२

बम्बई	माघ शु. ९	गुरु.	२०/२	१
पीपलानी (भोपाल)	माघ शु. १० से फाल्गुन कृ. ३ (माघ शु. १५ क्षय)	शुक्र से शुक्र	२१ से २८/२	८ (हवाई जहाज से। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा फा.कृ. ३)
बेगमगंज	फाल्गुन कृ. ४	शनि.	१ मार्च	१
खुरई	फाल्गुन कृ. ५-६-७	र. सो. मं.	२ से ४/३	३ (मानस्तंभ वेदी प्रतिष्ठा फा.कृ. ७)
विश्रामगृह	फाल्गुन कृ. ७	मंगल	४/३	(खुरई से शाम को प्रस्थान कर रात्रि विश्राम)
सनावद	फाल्गु कृ. ८-१	बु.गु.शु.श.	५ से ८/३	४ (वहाँ से भोपाल आकर, हवाईजहाज द्वारा इंदौर होकर सनावद। समवसरण वेदी प्रतिष्ठा फा.कृ. ११)
विश्रामगृह	फाल्गुन कृ. १२	रवि.	९/३	(इंदौर आकर हवाई जहाज में भोपाल होकर)
सागर	फा.कृ. १३, १४ ३०, फा.शु. १	सो.मं.बु.गु.	१० से १३/३	४
बीना-बजरिया	फा.शु. २ और पहली ३		शुक्र-शनि	१४-१५/३ २
विश्रामगृह	फा.शु. पहली ३	शनि	१५/३	(बीना-बजरिया से शाम को प्रस्थानकर रात्रि-विश्राम)
इंदौर	फा.शु. दूसरी ३, ४, ४, ६	र.सो.मं.बु.	१६ से १९/३	४ (वहाँ से भोपाल आकर हवाईजहाज द्वारा इंदौर)
लोहारदा	फा.शु. ७, (८ क्षय), ९, १०	गु. शु. श.	२० से २२/३	३

खातेगाँव	फा.शु. ११, १२	रवि–सोम	२३–२४/३	२
विश्रामगृह	फा.शु. १२	सोम	२४/३	(खातेगाँव से शाम को प्रस्थान कर रात्रिविश्राम)
बड़नगर	फा.शु. १३, १४	मंगल–बुध	२५–२६/३	२
सिद्धवरकूट	फा.शु. १५, चैत्र कृ. १	गुरु–शुक्र	२७–२८/३	२
खंडवा	चैत्र कृ. २, ३, ४	श. र. सो.	२९ से ३१/३	३
जलगाँव	चैत्र कृ. ५ (६ क्षय), ७, ८	मं.बु.गु.	१ से ३ अप्रैल	३
धरणगाँव	चैत्र कृ. दूसरी ८	शुक्र	४/४	१
विश्रामगृह	चैत्र कृ. दूसरी ८	शुक्र	४/४	(धरणगाँव से शाम को प्रस्थान कर रात्रिश्राम)
बम्बई	चैत्र कृ. ९	शनि	५/४	१ (वहाँ से औरंगाबाद आकर हवाईजाहज से)

(प्रवास का शेष क्रम अगले माह में)

हमारे वृद्धजनों के लिये—खास वैराग्य-संबोधन

❀ कदाचित् वृद्धावस्थाजनित रोगादि अनेक बाधाओं ने एवं चिंताओं ने आपको घेर डाला होगा... तथा कभी-कभी आपको दीनपरिणाम भी हो जाते होंगे... किंतु हे आदरणीय मुमुक्षु-भ्रात! यह आपको शोभा नहीं देता। शरीर का तो ऐसा ही स्वभाव है कि जिसमें जीर्णता एवं रोगादि व्याधि हो। उसका सोच न करके उसके विपरीत ऐसे आत्मस्वभाव का विचार करके उत्साह-परिणाम करो।

❀ सच्चा निरोग होना हो और आनंद की प्राप्ति करनी हो तो आत्मा को शांतपरिणाम में रखो। क्रोध है, सो रोग है और शांति है, सो सुख है।

❀ जिसने जिनधर्म पाया, वह जीव अपने को कभी दीन या गरीब अनुभव नहीं करता, क्योंकि—दुनिया में सबसे श्रेष्ठ रत्न ऐसे जिनवरदेव, रत्नत्रयवंत, मुनिराज परम गुरु, तथा आत्मस्वरूप दिखानेवाली जिनवाणी,

—ऐसे सर्वोत्कृष्ट तीन रत्न जब मेरे अंतर में सदैव विराजमान हैं, तब दारिद्र्यता कैसी? और दीनता कैसी? मेरे ये तीन महा रत्न परभव में भी मेरे साथ ही रहनेवाले हैं; देह और धन-परिवार तो छूट जायेगा—भले छूटे—परंतु मेरे देव-गुरु-धर्म मेरे अंतर में से कभी दूर होनेवाले नहीं हैं।—ऐसा विचार करके उल्लास से उसकी आराधना करो।

❀ भले ही सारा संसार प्रतिकूल हो जाये, तो भी देव-गुरु-धर्म हमसे कभी प्रतिकूल नहीं होवेंगे, वे हमारे सदा के साथीदार तथा सच्चे हितस्वी हैं।

❀ यदि कोई पूछे कि, आपको क्या चाहिए?

— तो मुमुक्षु कहते हैं कि—मेरे पास वीतरागी देव-गुरु-धर्म तो हैं ही, और वे मुझे आत्मा की अपूर्व अनुभूति के देनेवाले हैं; यदि इससे भी अच्छी चीज़ इस जगत में कहीं हो-तो मेरे को दे दो!—इससे अच्छा तो जगत में अन्य कोई पदार्थ नहीं है—कि जिसको मैं लेना चाहूँ। आत्मा की निर्विकल्प अनुभूति करूँ—बस, एक यही मेरी भावना है।

❀ इसप्रकार, मुमुक्षु के इस जगत में अपने आत्मा की आनंदअनुभूति के अतिरिक्त बाह्य में अन्य किसी की भावना नहीं होती; निरंतर दिन-रात वह निजअनुभूति को ही भाता है।

❀ अहो, अनुभूति की भावना करते-करते, मुमुक्षु को कोई ऐसी अद्भुत शांति तथा उत्साह जागृत होती है कि संसार भर की सारी चिंतायें तथा दु:ख दूर हो जाते हैं।

अत: अन्य चिंता न करके ऐसी आत्मभावना को भावो।

सारे भारत में अभूतपूर्व निर्वाणमहोत्सव...
पाँच जगह से धर्मचक्र का प्रवर्तन

हमारे धर्मतीर्थ के कर्ता, शासननायक सर्वज्ञ महावीरदेव के निर्वाण का जो २५०० वर्षीय महोत्सव प्रारंभ हो चुका है, उसका जगह-जगह का समाचार इतना बड़ा भारी उत्साहजनक है कि उसको हम लेखनी में पूरे नहीं ला सकते। जैनसमाज के उपरांत जैनेतर समाज ने भी इस उत्सव में साथ देकर भगवान के प्रति जो भक्तिभाव दिखलाया—ऐसा स्वप्न में भी नहीं सोचा था। जगह-जगह पर सभी जैनसमाज मिलकर आनंद से उत्सव मनाते हैं—यह भी हमारे सबके लिये खुशी की बात है।

पाँच जगह से जैनधर्मचक्र चल रहा है—जो कि जैनधर्म का जय-जयकार फैलाता हुआ पूरे भारत में घूमेगा—

(१) दिल्ली से चलनेवाले धर्मचक्र का उद्घाटन प्रधानमंत्रीणी श्रीमती इंदिराबेन ने किया - जो अभी हरियाणा प्रदेश में घूम रहा है। २ फरवरी को चारमास के लिये राजस्थान में प्रवेश करेगा; दीपावली १९७५ को हस्तिनापुर-तीर्थ में इसका समापन होगा।

(२) दूसरा धर्मचक्र इंदौर से चला है।

(३) तीसरा धर्मचक्र श्रवणबेलगोल से प्रारंभ हुआ है।

(४) चौथा धर्मचक्र राजगृही से प्रारंभ हो रहा है।

(५) पाँचवाँ धर्मचक्र गुजरात का फतेपुर से गिरनार जाकर फिर देश के अनेक भाग में यात्रासंघ के साथ चलेगा।

—प्रादेशिक सरकारों ने प्रत्येक जिले के कलेक्टरों को आदेश दिया है कि 'धर्मचक्र' जहाँ पर पहुँचे उसका सरकारी तौर पर स्वागत किया जाये, व सरकारी स्तर पर देशभाल रखी जावे।

वाह, निर्वाणोत्सव वाह! विश्व में सबसे ऊँचा जो निर्वाणपद, उसके उत्साह का क्या कहना? २५०० वर्ष पहले भगवान के निर्वाण के समय जैसा उत्सव हुआ था, ऐसा ही मानो फिर से हो रहा है—मात्र उस समय में इंद्रलोग भी भाग लेने को आये थे, इस समय वे अभी तक नहीं आये—परंतु हम सबका बड़ा भारी उत्साह देखकर शायद वे भी आ जाये! और नहीं आयेगा तो भी हमारी भक्ति उनसे कम तो नहीं ही होगी—हम भी उनके जैसे ही, महावीर के भक्त हैं। ॥ जय महावीर ॥

❀ **सनावद में** भगवान सीमंधरस्वामी का समवसरण मंदिर बन रहा है—जिसकी शिलान्यास विधि तारीख १८-१२-७४ के दिन आगरावाले सेठ पदमचंदजी के सुहस्ते संपन्न हुई।

महावीर-परिवार

इस विभाग के द्वारा प्रसारित छह बोल के संकल्प-पत्रक द्वारा सदाचार का एवं धर्म-संस्कार का बहुत सुंदर प्रचार हुआ है, छोटे-बड़े सभी ने उत्साहपूर्वक सदाचार का स्वीकार किया है; सभी को धन्यवाद के साथ यह विभाग समाप्त किया जाता है—

४०१ कमलेशचंद्र नेमचंद जैन, मंडला
४०२ नत्थुलाल जैन, मंडला
४०३ बिरतीबाई नत्थुलाल जैन, मंडला
४०४ से ४१५ मुमुक्षु भाई व बहिन, दमोह
४१६ पन्नालाल सोनलाल, खंडवा
४१७ सीमीबाई मातेश्वरी, खंडवा

४१८ चंपालाल जैन, ग्वालियर
४१९ अशोककुमार जैन, सिवनी
४२० सुनीलकुमार जैन, सिवनी
४२१ ताराचंद जैन, दिहायला
४२२ सुभाषचंद्र जैन, गौरझामर
४२३ गोकुलचंद जैन, आरौन
४२४ हजारीलाल जैन, आरौन
४२५ भूरीबाई जैन, आरौन
४२६ से ४३५ मुमुक्षु भाई व बहनें, सोलापुर
४३६ लीलाबाई जयकुमार जैन, कुरवाई
४३७ कस्तूरबाई नेमीनाथ जैन, मुरुड
४३८ से ४४९ मुमुक्षु भाई व बहनें, उस्मानाबाद
४५० सोनुबाई मोतीचंद जैन, अक्कलकोट
४५१ जीऊबाई हीराचंद जैन, ''
४५२ से ४६५ मुमुक्षु भाई व बहनें, गैरतगंज
४६६ कजोडीलाल जैन, पिडवा
४६७ रतनचंद भारिल्ल, जबलपुर
४६८-९ कुमारी सुषमा जैन, सुधा जैन, करेली
४७० अनिलकुमार जैन, करेली
४७१-२ गेंदाबाई जैन, कपूरचंद जैन, करेली
४७३ सौ. रत्नमालाबेन गुलाबचंद जैन, करेली
४७४ अमृतलाल चंपालाल जैन, तराना
४७५ कमलाबाई सोहनलाल जैन, तराना
४७६ मेनादेवी चौधरी, देवास
४७७ बसंतबेन नगीनदास जैन, भावनगर
४७८-९ विमलकुमार, राजकुंवरबाई जैन, दमोह

—इसके उपरांत अहमदाबाद एवं गुजरात के नाम भी बहुत संख्या में मिले हैं।

सदाचार का पालन कीयिजे और जीवन को ऊँचा उठाईये।

जय महावीर

आत्मधर्म के इस अंक में एक फोर्म (३००० प्रति माने २४००० पृष्ठ) अधिक देने का खर्च रु. ४०१) दिल्ली के सेठश्री नेमचंदजी मोतीलालजी जैन की ओर से आये हैं-इसके लिये धन्यवाद!

चिंता छोड़ो रे भाई

जीव अनेकविध चिंता करके दु:खी होता है; परंतु यदि एकबार चिंता छोड़कर उपयोग को अंतर में जोड़े तो ऐसी कोई अद्‌भुत निजवस्तु को देखे तथा ऐसा आनंद होवे, कि फिर चिंता का कोई कारण ही न रहे। क्या आप भी चिंता करते हो?... यदि हाँ... तो आप यह भजन पढ़ो... और फिर समस्त चिंताओं को छोड़कर परिणति को आत्मा में जोड़ो। (सं.)

चिंता छोड़ो रे भाई... निज में देखो रे भाई!

निज में सुख की खान भरी है, क्या पर का फिर काम।
बाहर के संयोग में रे, देखो न आतमराम॥ चिंता०॥

अनुभव की न्यारी दशा रे, आनंद से भरपूर।
जो निज अनुभव कर सको रे, चिंता भागे दूर॥ चिंता०॥

बाहर की अनुकूलता हो या प्रतिकूल संयोग।
ज्ञानी को तो सुख सागर रे अंतर का उपयोग॥ चिंता०॥

शुद्ध अखंड स्वभाव में रे, क्षणिक विभाग अभाव।
चिंता का कारण बने रे असत् संयोगी भाव॥ चिंता०॥

तू यदि सुख को चाहता रे, परिणति निज में जोड़।
चेतन! निज-वैभव तेरा रे, पर से नाता तोड़॥ चिंता०॥

चिंता छोड़ो रे भाई, निज में देखो रे भाई॥

एक आत्मार्थी, गौहाटी

हमारे जैन-जवानों से.... ?

बंधु ! आप वीर की संतान हो, आप उत्तम सदाचार का पालन करो। अभी हमारे भगवान के निर्वाण का २५०० वर्षीय महान उत्सव चल रहा है, आप भी उसमें भाग लेकर अपने जीवन को ऊँचा उठाओ। ऐ सिनेमा देखनेवाले जवानों ! मैं आपसे पूछता हूँ कि सिनेमा देखने में धन का दुर्व्यय करके तथा तीन घंटे तक विषय-कषाय के अकेले अशुभ-पापभाव का सेवन करके, उसके बदले में आपको कौन-सा फायदा मिलता है ? ....छोड़ दो उसको; और उतना समय कोई भी धार्मिक भावना में या शास्त्र पढ़ने में लगाओ, इससे आपको बहुत फायदा होगा; और उसमें जितनी रकम की बचत हो, उसको धार्मिककार्य में लगा दो, जिससे समाज के हजारों-लाखों रुपयों का महान सदुपयोग होगा। आप वीर की बहादुर संतान हो करके भी जीवन में नफा-नुकसान का इतना भी हिसाब नहीं करोगे क्या ? जवानों ! बहादुर बनों और आज ही धर्म में आगे कदम बढ़ाओ। —जय महावीर (संपादक) ★

माता-पिता से भी बड़ा उपकार

शिवपुरी से एक भावपूर्ण पत्र आया है जिसमें मुमुक्षु भाई प्रेमचंद जैन लिखते हैं कि—'आत्मधर्म पढ़ते-पढ़ते मुझे कैसा अच्छा लगता है वो तो मैं ही जानता हूँ, शब्दों में व्यक्त करके दिखा नहीं सकता। मुझे उम्मीद है कि मुझे जैसे मेरे साधर्मी भाई भी आत्मधर्म का पठन करके आनंद ले-लेकर आँखें बंद करके बारबार अपने में खोजते होंगे, और उन्हें भी मेरे जैसा ही वेदन होता होगा। मैंने कई बार सोचा कि एक धन्यवाद पत्र लिखूँ। वास्तव में आप बहुत-बहुत धन्यवाद के पात्र हैं। बड़ा उपकार है जो इतना श्रम करके कैसे-कैसे न्याय से आगमसंगत सिद्धांतों को अत्यंत सरलतापूर्वक हमें समझाते हैं—कि जिसे पढ़-पढ़कर मन नाच उठता है। असंख्य जन्मों के माता-पिताओं से भी असंख्यगुणा उपकार 'आत्मधर्म' का हम जैसों पर है। हम आपके अत्यंत कृतज्ञ है।

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) कार्तिक (३५६)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र) प्रति ३०००